क्रांति का अगला कदम

दादा धर्माधिकारी

क्रान्ति का अगला कदम

[भूदान-यज्ञ का प्रयोजन और प्रभाव]

दादा धर्माधिकारी

१९५५

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, काशी

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (म० प्र०)

तीसरी बार २०,०००
अगस्त, १९५५
मूल्य : चार आना

मुद्रक :
विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस,
जतनबर, बनारस

दादा के लेखों के लिए प्रस्तावना की आवश्यकता नहीं है। दादा भूदान-यज्ञ की कल्पना में पूरे रँग गये हैं। "तुरत दान महाकल्याण" की भावना से वे बोलते ही नहीं। "नित्य दान पापच्छेद" ही उनकी भूमिका रहती है। वे प्रत्येक विचार कसौटी पर कसकर ही प्रस्तुत करते हैं। इससे उनका भाषण श्रोता पर आक्रमण जैसा नहीं होता, बल्कि उसे प्रसन्न कर देता है।

अब जन-मन में भूदान-यज्ञ की कल्पना ने जड़ पकड़ ली है। कम-से-कम बिहार में तो आज ऐसी परिस्थिति है कि कोई भी, लोगों में पहुँचकर जमीन प्राप्त कर सकता है, किंतु इस तरह, किसीके भी पास जाकर जमीन ले आने से भूदान-यज्ञ-कार्य नहीं होगा। जिन्होंने इस विचार को पूरी तरह समझ लिया हो तथा वह जिन्हें पट गया हो, वे ही लोग जनता के पास पहुँचें। युक्ति-बुद्धि से युक्त तथा सेवा की भावना से ओतप्रोत कार्यकर्ताओं के निर्माण में, मुझे आशा है कि दादा की यह रचना उपयोगी सिद्ध होगी।

मैंने भूदान-यज्ञ को 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' नाम दिया है। परिशुद्ध विचार की नींव पर ही 'धर्म-चक्र-प्रवर्तन' हो सकता है। परिशुद्ध विचार के लिए नपी-तुली शब्द-योजना की जरूरत होती है। इस प्रकार की शब्द-योजना ऋजु-बुद्धिवाले को सहज साध्य होती है। दादा भी ऋजु-बुद्धि होने से नपे-तुले विचार को ग्रहण करते हैं तथा उन्हें अनुकूल भाषा सूझती है। दादा का योग विद्वत्ता का नहीं, ऋजुता का है। वाचकों को इस रचना का भी उसी ऋजुता से चिन्तन-मनन करना चाहिए, तभी उन्हें अपेक्षित लाभ होगा।

—विनोबा

बिहार शरीफ
१५ अगस्त, '५३

लेखक के दो शब्द

भू-दान-यज्ञ-आंदोलन क्रान्तिकारी आन्दोलन है। वह शोषित और दलित वर्ग का उत्साह और वीरता बढ़ानेवाला है। वह क्रान्ति का विरोधी नहीं है, विरोधी है रक्तपात, क्रूरता और हृदय-हीनता का। भावना जितनी शुद्ध और उदात्त होगी, क्रान्ति के सैनिक की शक्ति भी उतनी ही अमोघ होगी।

—दादा धर्माधिकारी

विषय-सूची

क्रान्ति का अगला कदम

: १ :

क्रान्ति का अगला कदम

भूदान-यज्ञ-आन्दोलन की मनशा एक वाक्य में यह है कि हम गरीब की मालकियत कायम करना चाहते हैं। आज उसकी हुकूमत कायम हो गयी है। हम चाहते हैं कि उसकी हुकूमत की मार्फत इस देश की जमीन और दौलत पर भी उसकी मालकियत कायम हो।

सबसे पहले हम गरीब आदमी की हुकूमत का मतलब समझ लें। शुरू-शुरू में दिल्ली में जब संविधान-परिषद् की बैठक हो रही थी, तब कई देश-हितैषी मित्रों ने आग्रहपूर्वक लिखा कि और जो कुछ करना हो सो कीजिये, परन्तु किसी भी हालत में दिल्ली को स्वतन्त्र भारत की राजधानी मत होने दीजिये। उनसे पूछा, "क्यों ?" तो कहने लगे—

"इस दिल्ली में आज तक किसी राजा, सम्राट् या बादशाह का राज कायम नहीं रह सका, तुम्हारा भी नहीं टिक सकेगा। यह बड़ी अभागिनी नगरी है।"

उनको जवाब दिया गया कि यह तो दिल्ली का दोष नहीं, गुण है। दिल्ली किसी राजा, सम्राट् या बादशाह की सत्ता सह नहीं सकी। वह बड़ी भाग्यवती और सुलक्षणा नगरी है।

इसलिए उसने राजाओं की राजधानी रहना पसन्द नहीं किया। आज वही दिल्ली भारतवर्ष के लोकराज्य की 'लोकधानी' बन गयी है। राजा और राजवंश पैदा होते हैं और खत्म हो जाते हैं। सल्तनतें और खानदान बनते हैं और बिगड़ते हैं, लेकिन देश की जनता गंगाजी की धारा और चाँद-सूरज की तरह अमर होती है। राजधानी दिल्ली इस देश की पुण्य-नगरी नहीं थी। 'लोकधानी' दिल्ली आजाद हिन्दुस्तान की अमरपुरी है। उस पवित्र नगरी में लोगों के सिंहासन की प्राणप्रतिष्ठा हुई है और उस पवित्र भूमि का प्रोक्षण हमारे राष्ट्रपिता ने परम पवित्र रक्त से किया है।

लोकराज्य के लक्षण

लोकराज्य की स्थापना का पहला परिणाम यह है कि अब इस देश में हिमालय से लेकर कन्याकुमारी और सदिया से लेकर द्वारिका तक किसी भी जगह कोई राजा नहीं है। पाँच-सात साल पहले किसी को कल्पना भी नहीं थी कि ऐसा शुभ दिन इतनी जल्दी आयगा। आज दिल्ली के तख्त पर किसी व्यक्ति का अधिकार नहीं है। उस पर अपनी मर्जी से कोई नहीं बैठता। तलवार से तख्त पर कब्जा कोई नहीं कर सकता और न कोई उसे खरीद ही सकता है। राजेन्द्र बाबू और जवाहरलालजी दिल्ली की कुर्सी पर बैठते हैं, लेकिन अपनी मर्जी से नहीं। इस देश के गरीब-से-गरीब नागरिक की इजाजत और अनुमति से बैठते हैं। उनके बाद उनकी कुर्सियों पर उनका बेटा या बेटी नहीं बैठ सकते। इस देश के नागरिकों की दुबारा इजाजत लिये बिना वे खुद भी नहीं बैठ सकते। लोकराज्य का यह पहला लक्षण है।

दिल्ली के सिंहासन पर राष्ट्रपति बननेवाले व्यक्ति का जितना अधिकार है, उतना ही अधिकार राष्ट्रपति-भवन में

सफाई करनेवाली मेहतरानी का भी है। प्रधानमन्त्री बननेवाले व्यक्ति का जितना हक है, उतना ही उनके दफ्तर को झाड़ने-बुहारनेवाले फर्राश का भी है। बिड़ला-टाटा-डालमिया जैसे धनकुबेरों का जितना अधिकार दिल्ली के सिंहासन पर है, उतना ही बाजारों में और स्टेशनों पर बोझा ढोनेवाले कुलियों का है। लोकराज्य का यह दूसरा लक्षण है।

गरीब राजा बन चुका है। हमने एक कदम उठा लिया है। अब उसे वापस नहीं लेना चाहते। दूसरा कदम उठाना चाहते हैं। जो गरीब राजा बन गया है, वह मालिक भी बनकर रहेगा।

कुछ लोग कहते हैं कि गरीब को मालिक बनाना है, तो उसकी हुकूमत लौटा लो। जनतंत्र के संदर्भ में और जनतंत्र के द्वारा आर्थिक क्रांति नहीं हो सकती। उनका मतलब यह है कि गरीब को सुखी बनाना हो, तो उसकी आजादी छीन लो। यह सलाह हमको आगे नहीं ले जाती, बल्कि पीछे ले जाती है। जनतंत्र, राज्यशास्त्र का आधुनिकतम आविष्कार है। जन-तंत्र से बढ़कर राज-काज का तरीका मनुष्य अब तक नहीं खोज पाया। हम लोकराज्य को कायम रखना चाहते हैं और उसकी मार्फत लोकस्वामित्व की स्थापना करना चाहते हैं।

अमीर का कुत्ता भी चैन से जीता है

एक प्रसंग है। एक अधेड़ आदमी रेल के दूसरे दर्जे में जगह न पाकर पहले दर्जे के डब्बे में बैठ गया। उस डब्बे में आजकल की पढ़ी-लिखी एक लड़की बैठी थी। उसका ठाट-बाट, तौर-तरीका बिल्कुल अद्यतन था। हमें लड़की की आलो-चना नहीं करनी है। शहर में रहनेवालों के घर-घर में और

हमारे घरों में भी ऐसी लड़कियाँ हैं। उस लड़की की गोद में उसका लाड़ला कुत्ता बैठा हुआ था। लड़की जरा-जरा देर में अपने कुत्ते को कभी टॉफी खिलाती, कभी केक खिलाती और कभी बिस्किट खिलाती। यह अधेड़ आदमी बड़े कुतूहल से देख रहा था। आप जानते हैं, जब आदमी का दिमाग खाली होता है तो उसमें शैतान अक्सर आ जाता है, भगवान् भूले-भटके भी वहाँ नहीं फटकते। कम-से-कम हमारा यह हाल है। उस बूढ़े का भी यही हाल हुआ। बैठे-बैठे वह सोचने लगा कि मैं इस लड़की का कुत्ता होता तो क्या होता ?

आप लोगों के दिमाग कुछ बुलंद हैं, इसलिए आप लोग ऊँची बातें सोचते हैं। कोई सोचता है, मैं स्टालिन होता तो क्या करता ? कोई सोचता है, मैं जवाहर होता तो यों करता, त्यों करता। बागवां होता तो गुलशन लुटा देता। आप लोगों के बड़े दिमाग हैं, इसलिए बड़े-बड़े हौसले हैं। यह गरीब बैठे-बैठे यही सोच रहा था कि इस लड़की का कुत्ता होता, तो क्या होता ? बेचारे का दिमाग छोटा था।

तीन फायदे तो साफ दिखाई देते थे। इस उम्र में जब कि लड़के बड़े हो जाते हैं, अपना-अपना अलग घर बना लेते हैं, सिर रखने के लिए एक लड़की की गोद का सहारा मिल जाय तो हजार नियामत है। भगवान् का बहुत बड़ा वरदान है। यह एक फायदा हुआ। दूसरा फायदा यह था कि जरा-जरा सी देर में पक्वान्न और गिजाएँ खाने को मिलतीं और तीसरा सबसे बड़ा फायदा यह होता कि भूख लगने पर हड्डी की फिराक में गली-गली की खाक नहीं छाननी पड़ती। तीनों फायदों का वजन कुछ कम नहीं था। बूढ़े का जी चाहने लगा कि कुत्ता बन जाऊँ तो फायदे में ही रहूँगा।

इतने में ही उसके भीतर, उसके हृदय की तह में जो इन्सान बैठा हुआ था, गंभीर आवाज से पूछने लगा, "यदि भगवान् प्रसन्न होकर तेरे सामने आकर खड़े हो जायँ तो क्या तू उनसे यह वरदान माँगेगा कि "प्रभो ! मुझे इस लड़की का कुत्ता बना दो ?" जवाब में भीतर से दूसरी आवाज अधिक निश्चित और अधिक गंभीर निकली कि "इस लड़की का कुत्ता बनकर इस तरह सुख-चैन से गिजाएँ खाने के बनिस्बत आजाद और गरीब मनुष्य रहना कहीं अच्छा है।"

गरीब : आजाद या सुखी ?

जो लोग आजादी से आराम को ज्यादा पसन्द करते हैं, स्वतन्त्रता से सुख का मूल्य अधिक मानते हैं, वे न आराम ही पाते हैं, न आजाद ही रह सकते हैं। वे स्वतन्त्रता से हाथ धो बैठते हैं और सुख को भी खो देते हैं। हम गरीब आदमी के सुख और आराम के लिए उसकी आजादी की कीमत नहीं देना चाहते। मुट्ठी भर सत्ताधारी पालक और अभिभावकों के हाथ में उसकी जिन्दगी और इज्जत नहीं सौंप देना चाहते। हम गरीबों को उनके अधिकारों के ठेकेदारों का सुखी कैदी नहीं बनाना चाहते। इसलिए हम कहते हैं कि गरीब आदमी की मालकियत गरीब आदमी के राज की मार्फत कायम होगी।

पूछा जाता है कि मुट्ठी भर आदमी अगर अपने हाथ में सत्ता लेकर गरीब के सुख-चैन का ठेका ले लें, तो क्या हर्ज है ? जो लोग यह सवाल पूछते हैं, वे भूल जाते हैं कि धन का नशा अगर होता है, तो सत्ता का भी नशा उसकी अपेक्षा किसी कदर कम नहीं होता। जिनके हाथ में दौलत और संपत्ति होती है, वे जिस कदर उन्मत्त हो जाते हैं, उसी तरह अबाधित और निरंकुश सत्ता जिनके हाथ में होती है, वे भी उन्मत्त हो जाते

हैं। हर शहर के धनाढ्य सेठ, साहूकार, जमींदार और सरमायादार जिस तरह अपने घमंड में चूर रहते हैं, उसी तरह मामूली पुलिस का सिपाही और छोटे-छोटे सरकारी अहलकार भी अपनी अकड़ दिखाये बिना नहीं रहते। धन का नशा अगर आदमी का मिजाज आसमान में चढ़ा देता है, तो सत्ता का कैफ (नशा) भी उसे अपने आपे में नहीं रहने देता। इसलिए हम लोकराज्य के द्वारा आगे कदम बढ़ाना चाहते हैं।

बिलाव और पंडितजी

गरीब की हुकूमत के लक्षण अब हमारी समझ में आ गये। अब यह देखना है कि गरीब की मालकियत किसे कहते हैं और उससे कौन से नतीजे निकलते हैं।

बंकिम बाबू की 'कमलाकान्तेर दफ्तर' नाम की एक बड़े मजे की किताब है। 'चौबे का चिट्ठा' नाम से उसका हिन्दी में अनुवाद भी निकला है। उस किताब में एक किस्सा है। किसी गाँव में एक ब्राह्मण देवता एक ग्वालिन के पड़ोस में रहते थे। भोजनप्रिय तो थे ही, भोजन का निमन्त्रण स्वीकार करना उनका पेशा था। आयेदिन ग्वालिन उनको निमंत्रित किया करती थी। एक बार श्राद्ध के दिन ब्राह्मण-देवता का नेवता हुआ। दक्षिणा मिलनेवाली थी। इसलिए ब्राह्मण देवता ने बड़ी ईमानदारी से और लगन से भोजन किया। कोई कसर नहीं रखी। आकंठ भोजन पाया। दक्षिणा लेकर ब्राह्मण पान चबाते हुए ज्योंही रवाना होने लगे, ग्वालिन बोली—

"महाराजजी, एक खोवे का गोला आपके नाम का मेरे घर रह गया है। इसे भी लेते जाइये, नहीं तो मुझे पाप लगेगा।" पंडितजी खोवे का गोला लेकर घर पहुँचे। खोवा बड़ी हिफाजत

से छींके पर रख दिया। किया हुआ भोजन पचाने के लिए कुछ कड़ी-सी माजून बनाकर खा ली। हल्का-सा नशा हुआ। उस नशे में बैठे सोचने लगे कि कल इस खोवे का क्या बने ? जिस तरह सरकार की और दूसरी राजनैतिक पार्टियों की पंचवार्षिक, द्विवार्षिक योजनाएँ बनती हैं, उसी तरह ब्राह्मण देवता की भी एकदिनात्मक, चौबीस घंटे की योजना बनने लगी। सोचने लगे कि कल इस खोवे का लड्डू बने या मोदक ? इतने में कहीं से एक बिलाव आया, और उस खोवे के गोले की तरफ लपका। पंडितजी बोले—

"अरे, तू बड़ा चोर है, लुटेरा है। दिनदहाड़े मेरे सामने से मेरा खोवा ले जाने के लिए आया है ?"

नशे की करामात ऐसी कि बिलाव भी बोलने लगा।

बिलाव ने गिड़गिड़ाकर कहा, "महाराज, आप उल्टी बातें कह रहे हैं। आपके पेट में गले तक अन्न भरा हुआ है। तिल रखने को भी जगह नहीं है। आप तो इस खोवे के हकदार हुए। मेरे पेट में तीन दिन से भूख की आग धधक रही है, अन्न का एक कण भी नहीं है। मेरा इस खोवे पर कोई अधिकार नहीं, यह कैसा न्याय है ? यह सीधी नीति नहीं, उल्टी नीति है !"

पंडितजी सुनकर बोले, "कमबख्त, तू तो मुझे ज्ञान सिखाने लगा, तू नास्तिक है। तू बोल्शेविक हो गया है, तू कम्यूनिस्ट हो गया है। धर्म के खिलाफ बात करता है, नीति और कानून के खिलाफ बात करता है।"

बिलाव कुछ दृढ़ता के साथ बोला, "ब्राह्मण देवता, जो धर्म, जो नीति और जो कानून अन्न पर भूखों का अधिकार बतलाने के बदले, उसका अधिकार बतलाता है, जिसका पेट ठसाठस भरा

हो, वह धर्म, धर्म नहीं है; वह नीति, नीति नहीं है; वह कानून, कानून नहीं है।"

अब तो पंडितजी और भी झल्लाकर बोले, "बच्चू, तुम सीधी तरह नहीं मानोगे? ठहरो, तुम पर अदालत में नालिश करता हूँ। संविधान ने मुझे कुछ मूलभूत अधिकार दिये हैं। उनका आधार लेकर सर्वोच्च न्यायालय में जाता हूँ।"

विलाव गंभीरता से बोला, "मुझे मंजूर है। आप जरूर मुकदमा चलाइये। लेकिन मेरी एक गुजारिश है। दो शर्तें मैं रखना चाहता हूँ। पहली शर्त यह है कि नालिश दायर करने के पहले आप खुद सात दिन का उपवास कीजिये। इन सात दिनों में अगर आपने पड़ोस की ग्वालिन के यहाँ से दूध चुराकर नहीं पिया तो मुझे आपकी फरियाद कबूल है। मेरी दूसरी शर्त यह है कि जिस हाकिम के इजलास में मेरा मामला चले, वह न्यायाधीश सात दिन का उपवास करे। इन सात दिनों के अन्दर अगर उसने अपनी मेम साहब की पेस्ट्री-शेल्फ (अलमारी) में से बिस्किट चुराकर नहीं खाये तो उस अदालत का फैसला भी मुझे मंजूर होगा।"

अब पंडितजी क्या जवाब देते? मुँह में ताला पड़ गया। काटो तो खून नहीं। इसके बाद दो ही सूरतें हो सकती थीं। पंडितजी में हिम्मत होती तो डंडा मारकर विलाव को भगा देते और विलाव में दम होता तो खोवे का गोला जबरदस्ती से छीनकर ले जाता। दोनों हालतों में मामला तय हो जाता, लेकिन समस्या हल नहीं होती।

गरीब की मालकियत के सूत्र

हम झगड़ा निपटाना नहीं चाहते, झगड़ा टालना भी नहीं

चाहते, समस्या को हल करना चाहते हैं। समस्या क्या है? खोवा उसे मिलना चाहिए, जिसको भूख हो। विलाव भूखा हो तो खोवा विलाव को मिले। ब्राह्मण भूखा हो तो ब्राह्मण को मिले। यह न्याय है। लेकिन छीनाझपटी में जो ज्यादा ताकतवर होगा, उसे खोवा मिलेगा। आज जरूरत की चीज उसे मिलती है, जिसकी जेव में पैसा है। उसे नहीं मिलती, जिसको जरूरत है। जो वीमार होने पर भी दवा खरीद नहीं सकता, वह बगैर दवा के मर जाता है। आज जरूरत की चीज उसे मिलती है, जिसकी जेव में पैसा है। कल उसे मिलेगी जिसके बदन में फुर्ती हो और हाथ में लाठी हो। आज थैलीवालों की मालकियत है, कल लाठीवालों की होगी। यह कोई क्रांति नहीं है। हम क्रांति चाहते हैं। हम एक ऐसा समाज कायम करना चाहते हैं, जिसमें जरूरत की चीज उसको मिलेगी, जिसको उसकी जरूरत है। गरीब आदमी की मालकियत का यह पहला सूत्र है।

गरीब आदमी की मालकियत का दूसरा सूत्र यह है कि उत्पादन के साधन उत्पादक के हाथ में होने चाहिए। अन्न उपजाने के साधन उसके हाथ में होने चाहिए जो अन्न उपजाता है और चीज बनाने के औजार उसके हाथों में होने चाहिए जो उन औजारों को चलाना जानता है और चलाना चाहता है। इसीका नाम सुव्यवस्था है। जो स्त्री रोटी बनाती है, उसके पास चकला-वेलन होना चाहिए और जो लिखती-पढ़ती है, उसके हाथ में कलम-कागज होना चाहिए। अगर रसोई बनानेवाली कहे कि मैं कागज-कलम लूँगी और लिखने-पढ़नेवाली कहे कि मैं चकला-वेलन लूँगी, तो चौपटराज होगा। आज कुछ ऐसा ही हो रहा है। जो जमीन जोतना नहीं जानता और जोतना नहीं चाहता वह जमीन का मालिक है। जो कारखाने

में किसी तरह का उत्पादक परिश्रम नहीं करना चाहता, वह कारखाने का मालिक है। यह अंधेरनगरी है। सवाल यह नहीं है कि किसके पास कितनी जमीन हो। यह बाद का सवाल है। बुनियादी सवाल यह है कि जो जमीन नहीं जोतता और जोतना नहीं चाहता, उसके पास एक चप्पा भर जमीन भी क्यों हो? और जो जमीन जोतता है, और जोतना चाहता है, उसका कब्जा जमीन पर क्यों न हो?

अंक-फरोशों का गोरख-धंधा

बहुत से लोग आँकड़ों और रकमों के चक्कर में फँस जाते हैं। यह आंदोलन अंक-फरोशों का आंदोलन नहीं है। मुंशी, मुहर्रिर और हिसाब-नवीस क्रान्ति नहीं करते। वे तो आँकड़ों के गोरख-धंधों में बुरी तरह खो जाते हैं। जमीन कितनी है, आदमी कितने हैं, जमीन जोड़ो, आदमी जोड़ो, जमीन और आदमी का गुणा करो, आदमी और जमीन का भाग करो, इसमें उनकी सारी अक्ल खत्म हो जाती है। एक बड़े मुरब्बी मुनीम का किस्सा मशहूर है। मुनीमगिरी में उम्र बीत गयी। लड़के की शादी का मुहूर्त्त नजदीक आया। उसके बाद फिर दो साल तक मुहूर्त्त नहीं था, बहुत खोज करने पर भी बीस साल की लड़की कहीं नहीं मिली। मुनीमजी ने दस-दस साल की दो लड़कियों से अपने बेटे की शादी ठीक कर ली। गणित कर लिया। लड़की से लड़की कट गयी, दस और दस बीस! दस और दस बीस तो होते हैं, लेकिन दस साल की लड़की और दस साल की लड़की को जोड़ने से बीस साल की लड़की नहीं बनती। लड़की से लड़की कट जाती है। हिसाब-नवीस हिसाब में लगे रहते हैं। आदमी से आदमी कट जाता है।

क्रान्ति के संकेतों से अभिमंत्रित मिट्टी

क्रांति में अंकगणित का नहीं, बीजगणित का हिसाब होता है। अंकगणित में अंक और संख्या होती है। आँकड़ों का वजन और कीमत नपी-तुली होती है, इनी-गिनी होती है। बीजगणित में संकेत होते हैं, चिह्न होते हैं, निशान होते हैं। इन संकेतों का मूल्य और उनकी प्रतिष्ठा अपरिमित होती है। उनके वजन की और कीमत की कोई हद नहीं होती। गांधीजी ने एक चुटकी भर नमक की पुड़िया बनाकर बेची। हिसाब-नवीस हिसाब लगाने बैठे कि इस रफ्तार से समुद्र कितने दिन में सूखेंगे और नमक के भण्डार कितने दिन में भरेंगे। इधर इनका हिसाब चला और उधर अंग्रेजों का आसन डोलने लगा। क्रांति की प्रक्रिया में संकेतों का महत्त्व कभी नहीं भूलना चाहिए। यह जो मुट्ठी-मुट्ठी मिट्टी भू-दान-यज्ञ के रूप में इकट्ठी हो रही है, वह क्रांति के संकेतों से अभिमंत्रित है।

हम अनुत्पादकों की मालकियत का निराकरण करना चाहते हैं। उत्पादकों की मालकियत कायम करना चाहते हैं। उत्पादक की मालकियत का मूलभूत सूत्र है: उत्पादन के साधन उत्पादक के हाथ में होंगे।

जमीन से आरंभ क्यों?

हम आरम्भ जमीन से करते हैं। इसके कारण स्पष्ट ही हैं। सबसे पहला कारण यह है कि हमारी सबसे बड़ी समस्या भूख है। भूख का जवाब अन्न है और अन्न उपजाने का साधन जमीन है। इसलिए जो जोतता है, उसके हाथ में जमीन होनी चाहिए। जो जमीन नहीं जोतता, उसे एक चप्पा भर भी जमीन रखने का अधिकार नहीं है। दूसरा कारण यह है कि हमारे

देश के अठहत्तर फीसदी से अधिक लोग जमीन के भरोसे जीते हैं। इसलिए इस देश में क्रांति की विभूति, जमीन जोतने-वाला किसान होगा। तीसरा कारण यह है कि उत्पादन के सारे साधनों का मूलभूत साधन, अखंड भण्डार यह वसुमति है, यह धरती है। कोयला, लोहा, तेल, लकड़ी आदि उत्पादन की सारी सामग्री इसीमें से निकलती है। इसलिए उत्पादक की माल-कियत का आरम्भ हम जमीन से करते हैं।

उत्पादक की मालकियत जिस अवस्था में कायम होगी उस अवस्था में अनुत्पादक कोई नहीं रहेगा। कुछ लोग यह आक्षेप करते हैं कि अगर आप किसानों को जमीन दे देंगे तो उत्पादन घट जायगा। वे सब अलाल हो जायँगे। जो लोग यह आक्षेप करते हैं, उनके सामने समाज का पूरा चित्र नहीं है।

सभी रानियाँ, सभी नौकरानियाँ!

एक घर में पाँच स्त्रियाँ थीं। एक दिन उन्होंने अपनी 'संवि-धान परिषद' की और यह प्रस्ताव मंजूर किया कि आज से हम पाँचों रानियाँ हैं। बजट भी पास कर लिया गया। चाँदी के पाँच झूले बने, उनमें जरतारी लड़ीदार रस्सियाँ लगायी गयीं। हरएक रानी बन-ठनकर बड़े मिजाज के साथ एक-एक झूले पर बैठ गयीं। पहला सवाल यह रहा कि झूला कौन झुलाये, क्योंकि पाँचों रानियाँ थीं। झूला झुलाना उनकी शान के खिलाफ था। लेकिन पाँचों बड़ी व्यवहारकुशल थीं। जब किसी प्रश्न के संबंध में अक्ल काम नहीं करती, तो सरकार और सत्ताधारी पार्टी कहती है कि इस समस्या को छोड़ दो। ऐसे मौके पर सरकार-विरोधी दल भी बड़ी सिफत के साथ कहता है, "जब जागतिक परिस्थिति बदलेगी, तब यह समस्या हल होगी।"

मँजे हुए राजनीतिज्ञों की तरह इन रानियों ने तय किया कि इस सवाल को छोड़ दो। हवा चलेगी तो अपने आप झूले झूलेंगे। एक सवाल तो निपट गया। फिर दोपहर के बारह बजे। भूख लगी, प्यास लगी। यह सवाल तो छोड़ा नहीं जा सकता था। तब होश ठिकाने आये। दूसरा प्रस्ताव हुआ कि हम सब एक-दूसरी को पानी पिलायेंगी, खाना खिलायेंगी, झूला झुलायेंगी। नतीजा यह हुआ कि उस मकान में जो रानियाँ थीं, वे ही नौकरानियाँ हो गयीं, जो नौकरानियाँ थीं वे ही रानियाँ हो गयीं। जितनी रानियाँ थीं, उतनी ही नौकरानियाँ हो गयीं। जितनी नौकरानियाँ थीं, उतनी सब रानियाँ हो गयीं। सभी रानियाँ हो गयीं, सभी नौकरानियाँ हो गयीं।

इसका नाम है—वर्गहीन समाज। जो मेहनत करेंगे वे मालिक होंगे। जो मालिक होंगे वे सब मेहनत करेंगे। सभी मालिक होंगे, सब मेहनती होंगे। वर्गहीन समाज से मतलब है—उत्पादकों का समाज।

उत्पादकों की मालकियत के तीन सूत्र हमारे हाथ आये: १. जरूरत की चीज जरूरतमन्द को मिलनी चाहिए। इसीका मतलब यह हुआ कि उत्पादन जरूरत के लिए होना चाहिए, न कि मुनाफे के लिए; २. उत्पादन के साधन उत्पादक के हाथ में होने चाहिए; ३. समाज में कोई व्यक्ति अनुत्पादक न रहे याने मालिक और मजदूर का भेद कहीं भी न रह सके।

दुःख-निवारण का नहीं, क्रान्ति का आंदोलन

हमारा आन्दोलन कष्ट-निवारण और दुःख-निवारण का आन्दोलन नहीं है। केवल भूखे को रोटी, नंगे को कपड़ा और खानाबदोश को मकान देना ही हमारा ध्येय नहीं है। हम गरीब

को मोहताज नहीं बनाना चाहते। उसे उपयोग की चीज देकर भिखारी नहीं बनाना चाहते। उत्पादन का साधन उसके हाथ में देकर उसे मालिक बनाना चाहते हैं। जमीन उपयोग की वस्तु नहीं है। जमीन उत्पादन का साधन है, इसलिए वह जोतनेवाले के हाथ में रहेगी।

अब आपको यह पता चल गया होगा कि भू-दान-यज्ञ-आन्दोलन जमीन के बँटवारे का आन्दोलन है, उत्पादन के साधनों के वितरण का आन्दोलन है। यह परम्परागत दान-धर्म का आन्दोलन नहीं है। आर्थिक क्रान्ति की नींव डालने का आन्दोलन है।

इसके बाद सवाल यह होता है कि हम अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए किन उपायों से काम लें। यह क्रांति की प्रक्रिया या क्रांति के मार्ग का प्रश्न है। आज तक दुनिया के सामने तीन रास्ते आये हैं। दो परम्परागत और पुराने, तीसरा नया अर्थात् क्रांति के साधन में ही क्रांति करनेवाला।

सिकंदर का रास्ता—अवैज्ञानिक और अनुपयुक्त !

पहला रास्ता सशस्त्र क्रांति का रास्ता कहलाता है। यह छीना-झपटी का, जोर-जबरदस्ती का, हठमर्दी का रास्ता है। किस्सा मशहूर है। एक रूमाल में ऐसी पक्की गाँठ लग गयी कि किसी से नहीं खुलती थी। सयानों ने सलाह दी कि सिकन्दर को बुलाया जाय। उसने सारी दुनिया फतह कर ली है, जरूर कोई हिकमत निकालेगा। सिकन्दर आया। उसने सिवा तलवार के कुछ नहीं सीखा था। तुरन्त तलवार उठाकर खट से गाँठ काट दी। रूमालवाला रोने लगा। कहने लगा, "हम तो गाँठ खुलवाना चाहते थे जिससे रूमाल साबित रहे, ये तीसमारखाँ ऐसे आये कि गाँठ खोलने के लिए रूमाल ही काट दिया।"

आश्चर्य है कि बड़े-बड़े अक्लमन्द लोग इसे क्रांति का तरीका कहते हैं। उनसे कहिये कि हम मनुष्यों के दिमाग बदलना चाहते हैं तो वे कहते हैं कि सिर ही काट लो, जिससे दिमाग ही न रहे, झंझट ही मिट जायगी। हम गरीबी और अमीरी को खत्म करना चाहते हैं—गरीब और अमीर को बराबरी के नाते साथ-साथ जिलाने के लिए; परन्तु गुत्थी काटने का वह तरीका इन्सानियत की जड़ ही काट देता है। यह विषम-मार्ग है, उल्टा रास्ता है। हम कश्मीर जाना चाहें तो वह हमें कन्याकुमारी पहुँचाता है। हमारे काम का यह रास्ता नहीं है। यह न तो वैज्ञानिक है, न समझदारी का ही।

निर्जीव हाथों का ढेर !

दूसरा रास्ता शासन और कानून का है। परन्तु जब तक जन-तंत्र में जड़ संख्या का महत्त्व है, तब तक कानून की मार्फत क्रांति नहीं हो सकती। एक दफा एक सिपाही ने दो हजार हाथ काटकर अपने सेनापति के सामने उनका ढेर लगा दिया।

सेनापति बहुत खुश हुआ। बोला, "दरअसल तू बड़ा बहादुर सिपाही है। दुश्मनों के दो हजार हाथ काटकर लाया। मगर क्या ही अच्छा होता अगर तू इसके बदले एक हजार सिर काट-कर लाता। तब हमें पता चलता कि दुश्मनों में से कौन-कौन मारे गये।"

सिपाही अदब के साथ बोला, "हुजूर, मैं तो सिर ही काटकर लानेवाला था, लेकिन मजबूर हुआ। सिर पहले ही कोई काट-कर ले गया था। इसलिए मैं हाथ काटकर लाया हूँ।"

इसका नाम है पार्लामेंटरी पद्धति। सारी ताकत और सारी अक्ल हाथ जुटाने में और हाथों का ढेर लगाने में खर्च होती

है। एक कहता है, मेरे डेरे में सौ हाथ हैं, दूसरा कहता है, मेरे डेरे में पचहत्तर हैं। सौवाला जीता, पचहत्तरवाला हारा। सिर्फ हाथों का हिसाब है। दिल और दिमाग से किसी का कोई सरोकार नहीं। इसे संख्या का जनतंत्र कहते हैं। यही आकारात्मक (Quantitative) जनतंत्र कहलाता है। जब हम कहते हैं कि हमारी मोटर में बीस घोड़ों की ताकत है, तब हमारे सामने घोड़ा नाम का जानवर नहीं होता। 'हार्स-पावर' में घोड़ा, ताकत की महज एक इकाई है। शक्ति का सिर्फ एक नाप है। 'पावर-पालिटिक्स' में, सत्तावादी राजनीति में, मनुष्य भी 'मैन पावर' की एक इकाई, केवल नाप बन जाता है। संख्या के और आकार के जनतंत्र में मानवीय गुणों का स्थान बहुत गौण रहता है। इसलिए संख्यात्मक और आकारात्मक जनतंत्र क्रांति का साधन नहीं बन सकता। वह औपचारिक, निर्जीव और निःसत्व जनतंत्र होता है। जनतंत्र में क्रांति की शक्ति पैदा करने के लिए गुणात्मक जनतंत्र की स्थापना करनी होगी। गुणात्मक जनतन्त्र की प्राण-प्रतिष्ठा करनी होगी। तब कहीं जनतंत्र में सजीवता और वास्तविकता आवेगी। गुणात्मक जनतन्त्र की स्थापना के लिए लोकजीवन में मानवीय मूल्यों का बीजारोपण करना होता है। मानवोचित गुणों का बीजारोपण कोई कानून नहीं कर सकता।

कानून की मर्यादा

कानून हमको गैरकानूनी आचरण से रोक सकता है; लेकिन ऐसे अनाचार से नहीं रोक सकता जो कानून के दायरे में न आता हो। चार सौ बीस धारा के अनुसार विश्वासघात करूँ तो न्यायाधीश मुझे सजा दे सकता है, लेकिन यूँ ही लोगों को चकमा देता रहूँ तो कानून मुझे दण्ड नहीं दे सकता। विधायक

शक्ति तो कानून में होती ही नहीं, बहुत हुआ तो वह बुराई करने से रोक सकता है। भलाई की प्रेरणा कानून नहीं पैदा कर सकता।

एक बात और। कानून मनुष्य को अधिकार देता है, लेकिन उसे अधिकार के उपयोग की शक्ति नहीं देता। कानून मनुष्य को बहुत हुआ तो मौका देता है, लेकिन मौके से फायदा उठाने की ताकत नहीं पैदा कर सकता। कानून घोड़े को पानी दिखा सकता है, पिला नहीं सकता।

कुछ उदाहरण लीजिये। हमारे संविधान के मुताबिक इस देश की हरएक स्त्री को उतना ही अधिकार है, जितना कि विजया-लक्ष्मीजी, राजकुमारीजी और सुचेता कृपालानीजी को है, यही सरोजिनीदेवी को था। लेकिन प्रत्यक्ष में हम क्या देखते हैं कि इस देश की गृहदेवियाँ मकान की चहारदीवारी से बाहर नहीं निकल सकतीं और रास्ते में घूँघट काढ़े या बुरका ओढ़े निकलती हैं। कानून ने अधिकार दे दिया, लेकिन ताकत नहीं दी। यही हाल अछूतों का है। अस्पृश्यता-निवारण कागज पर हो गया, लेकिन जीवन में अस्पृश्यता मौजूद है। कानून से शराबबन्दी हो गयी, लेकिन व्यवहार में शराबखोरी जारी है। मतलब यह कि जनतन्त्र की मार्फत क्रांति के लिए कानून जरूरी है, लेकिन कानून के लिए एक सामाजिक संदर्भ और अधिष्ठान की जरूरत होती है।

दुनिया भर के जनतंत्र का 'यक्ष' प्रश्न

कानून अपनी टाँगों पर खड़ा नहीं हो सकता। जिन दोनों में हम लोग अक्सर पतली दाल और खीर खाते हैं, उन दोनों से कानून की उपमा दी जा सकती है। दोनों को थामने के लिए किसी चीज का सहारा देना पड़ता है, नहीं तो वह लुढ़कता है।

कानून का यही हाल होता है। पूँजीवादी संदर्भ में उसे थैली का सहारा लगाया जाता है और जबरदस्ती की प्रक्रिया में वह लाठी का अनुचर बन जाता है। पुराने ग्रीस और रोम के नागरिकों को लोकराज्यों में इसका बहुत कटु अनुभव हुआ। लोगों के वोट कभी ख़रीद लिये जाते थे और कभी डरा-धमका-कर हड़प लिये जाते थे। आज हम देखते हैं कि लोगों की आकांक्षा और आवश्यकता के पीछे उनका वोट नहीं चलता। वे कभी वोट लोभ से देते हैं, या कभी भय से। वोटों की चोर-बाजारी या लूटमार से जिस जनतन्त्र का आरम्भ होता है, उसका स्रोत ही जहरीला बन जाता है। आज दुनिया भर के जनतन्त्र का यह 'यक्ष' प्रश्न है।

उम्मीदवार को जब किसी-न-किसी तरह चुनाव में जीतने की ही धुन होती है, तब उस पर वोट बटोरने का खब्त सवार हो जाता है। जो वोट माँगने जाता है वह मतों का याचक बन जाता है। जो मतों का याचक बन जाता है, वह लोकमत का निर्माण और परिवर्तन नहीं कर सकता। जिस जनतंत्र में मतों के संग्रह पर, 'कन्वैसिंग' पर ही दारोमदार है, उससे मत-परिवर्तन नहीं हो सकता। इसलिए कानून का रास्ता अनुकूल होते हुए भी पर्याप्त नहीं है।

कानून के मार्ग में एक दोष और भी है। उससे कानूनबाजी का सिलसिला जारी हो जाता है। दो होशियार वकील अड़ोस-पड़ोस में रहते थे। दोनों के मकान के बीच में दोनों के लिए एक सामान्य दीवार थी। एक दिन वह दीवार ढह गयी। दीवार का इमला, जिस वकील की दीवार थी उसके मकान में न गिरकर पड़ोसी वकील के मकान में गिरा। इमले का मालिक वकील चाहता था कि बगैर खर्च के इमला अपने मकान में आ

जाय। तीन रोज के बाद पड़ोसी वकील को उसने नोटिस दिया : "तीन रोज से हमारा इमला आपके अहाते में पड़ा है, फौरन लौटा दीजिए, नहीं तो चोरी का मामला चलाऊँगा।" पड़ोसी वकील कम तेज नहीं थे। उन्होंने उल्टा नोटिस दिया, "तीन रोज से इमला हमारी जगह में पड़ा है, फौरन किराया भेजिए, नहीं तो नालिश करनी होगी।"

कानूनी प्रतिक्रान्ति

सभी लोग कहते हैं कि कानून बना लीजिये। लेकिन कानून बनने पर उसे रद्द करने के लिए सर्वश्रेष्ठ न्यायालय की शरण लेते हैं। बरसों मामला चलता रहता है। कभी कानून स्थगित कर दिया जाता है, कभी अनधिकृत करार दिया जाता है। अगर सर्वोच्च न्यायालय ने भी कानून को वैध करार दिया, तो फिर विधान-सभा के सदस्यों के वोट जुटाने का प्रयत्न किया जाता है और विधान-सभा की मार्फत कानून में संशोधन कराने के प्रयास में कालापहरण होता है। जो लोग कानून बनाने की बात कहते हैं, उनके मन में अक्सर आज की मुसीबत कल-परसों तक टालने की वृत्ति होती है। कुछ लोगों के दिल में यह भावना भी छिपी होती है कि कानून के क्षेत्र में हमें भी अपने हथोड़े चलाने का मौका मिलेगा। पारिभाषिक शब्दों में इसे हम कानून के क्षेत्र में प्रतिक्रांति कह सकते हैं। इस प्रतिक्रांति का मुकाबला करने में ही समय खराब होता है।

इसके अलावा एक बुनियादी कठिनाई है। कानून दो प्रतिवादियों को मिलाने के बदले उनमें बिछोह पैदा करता है। जिसके खिलाफ कानून होता है, उसका दिल खट्टा हो जाता है। वह या तो दब जाता है या चिढ़ जाता है। जिसके हक में कानून होता है, वह फूला नहीं समाता। वह या तो उद्दंड हो

जाता है या उच्छृंखल। मालगुजारी या जमींदारी रद्द करानेवाले कानून के बारे में हमारा यह अनुभव है। गरीबी और अमीरी खत्म करने में हमारी मनशा, मनुष्य और मनुष्य के बीच का फासला खत्म कर देने की है। लेकिन कानून से यह उद्देश्य सफल नहीं होता। इसलिए भूदान-यज्ञ की प्रक्रिया का आधार मनुष्य का मत-परिवर्तन और वृत्ति-परिवर्तन है, न कि केवल वस्तु-परिवर्तन।

वर्ग-समन्वय नहीं, वर्ग-निराकरण

हम वर्ग-निराकरण चाहते हैं, वर्ग-समन्वय नहीं चाहते। वर्ग-समन्वय एक अपसिद्धांत है। अँधेरे और उजेले में सामंजस्य कैसे हो सकता है? अमीरी-गरीबी का मेल-मिलाप कैसे मुमकिन होगा? अमीरी की शर्त है कि गरीबी बनी रहे। अमीर की अमीरी जितनी बढ़ेगी, गरीब की गरीबी उतनी ही बढ़ती चली जायगी। वर्ग-समन्वय असंभव है। परन्तु हम वर्ग-निराकरण के साथ व्यक्तियों का समन्वय अवश्य चाहते हैं। अमीरी और गरीबी को खत्म करने के लिए अमीर और गरीब दोनों का सहयोग चाहते हैं। इससे वर्ग-निराकरण होगा और मानवता का विकास होगा। भूदान-यज्ञ क्रांति की एक ऐसी प्रक्रिया है, जिससे वर्ग-कलह के बिना वर्ग-निराकरण होता है और प्रतिक्रांति के लिए अवकाश नहीं रह जाता। सशस्त्र क्रांति में और कानून की क्रांति में यह विशेषता नहीं पायी जाती। उसमें से प्रतिक्रांति का प्रतिफल अनिवार्य रूप से निकलता है। जहाँ-जहाँ पर सशस्त्र क्रांति हुई है, उन राष्ट्रों के अनुभव से क्या हम कुछ भी सबक नहीं सीखेंगे?

इस ऐतिहासिक और सांस्कृतिक भूमिका को सामने रखकर इस देश में संत विनोबा ने आर्थिक क्रांति की एक अपूर्व और

अमोघ प्रक्रिया का आविष्कार किया है। भू-दान-यज्ञ के नाम से यही प्रक्रिया पहचानी जाती है। शब्द पुराने हैं, लेकिन उनका अर्थ क्रांतिकारी भावनाओं से और क्रांतिकारी संभावनाओं से परिपूर्ण है।

भू : धरित्री, वसुन्धरा, माता

बहुत लोगों का खयाल है कि 'भू' शब्द का अर्थ तो सब जानते ही हैं। दरअसल बात ऐसी नहीं है। 'भू' शब्द का अर्थ महज 'जमीन' नहीं है। 'भू' सिर्फ मिट्टी का ढेला नहीं है। 'भू' शब्द में मनुष्य कीं अनन्त सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक भावनाएँ संनिहित हैं। यह भू-गोल मनुष्य का निवासस्थान है। मनुष्येतर प्राणियों के साथ और प्रकृति के साथ सहजीवन का प्रयोग करने की उसकी प्रयोगभूमि है और अपने तथा दूसरे के जीवन-निर्वाह की सामग्री संपादन करने का मूलभूत साधन है। यह पृथ्वी हमारी धरित्री भी है, वसुन्धरा भी है और माता भी है। प्रभुत्ववादी मनुष्य ने इसे अपनी भोगदासी बनाना चाहा। वे नरपति और भूपति बनने में अपने आपको धन्य समझने लगे। भगवान् की कृपा से और विधाता की नियति से आज भारतवर्ष की पुण्य-भूमि में नरपति कोई नहीं रह गया है। अगला कदम यह है कि भूपति भी कोई नहीं रहेगा। आज तक जो राजा होता था, वही लोगों का स्वामी और जमीन तथा दौलत का मालिक होता था। आज हमारे देश का सिंहासन भारतवर्ष के लोकाध्यक्ष, चक्रवर्ती दरिद्रनारायण का है। इसलिए इस देश का धन और धरती भी अब किसी व्यक्ति की नहीं रहेगी, उस पर चक्रवर्ती दरिद्रनारायण का अधिकार रहेगा।

पुराणों में हमने पढ़ा है कि जब धरतीमाता तंग आ जाती

है, संतप्त और संत्रस्त हो जाती है तो गाय का रूप लेकर भगवान् के चरणों में जाती है और अपनी शिकायत उनको सुनाती है। आज धरतीमाता अखिल विश्व के पालनकर्ता भगवान् के चरणों में अपनी शिकायत रख रही है।

भगवान् पूछते हैं—

"तुझे कौन पीड़ा पहुँचा रहा है ?"

धरती कराहकर कहती है, "प्रभो, मैं इन मालिकों से तंग आ गयी हूँ।"

भगवान् आश्चर्यचकित होकर पूछतें हैं, "मालिक ! मृत्युलोक में तो सब तेरी संतान ही हैं, ये मालिक कहाँ से आ गये ?"

पृथ्वी लज्जित होकर कहती है, "क्या कहूँ भगवन्, ये मेरे पुत्र कहलाते हैं, लेकिन पति बनना चाहते हैं। बेटे कहलाते हैं, लेकिन मालिक बनने का दम भरते हैं। ऐसे अधम हैं।"

भगवान् बोल चुका है, न कोई राजा होगा, न कोई मालिक

धरतीमाता के अन्तस्तल से निकलनेवाली गुहार, उसकी मिट्टी के जर्रे-जर्रे में से उठनेवाली यह हूक, भगवान् के हृदय में गूँजने लगी है। इस देश का सारा आसमान और वायुमंडल भूमाता की इस आकांक्षा से प्रतिध्वनित होने लगा है। भगवान् बोल चुके हैं कि जिस तरह इस देश में अब कोई राजा नहीं रह गया है, उसी तरह कोई मालिक भी नहीं रहेगा। यह विधाता का विधान है। इसमें फर्क नहीं पड़नेवाला है।

सवाल यह हो सकता है कि जब विधाता के विधान से और इतिहास की नियति से यह होने ही वाला है, तो भू-दान-यज्ञ की इस झंझट का क्या प्रयोजन ? जवाब यह है कि जो क्रांति साधा-

रण मनुष्य के विधायक पुरुषार्थ से होती है, उसीमें मानवीय मूल्यों की प्राणप्रतिष्ठा करने की सामर्थ्य होती है, केवल प्रतिकारात्मक शक्ति में अभावरूप पुरुषार्थ होता है। उसमें निषेधात्मक प्रेरणा होती है। लोकव्यापी विधायक पुरुषार्थ के आन्दोलन के बिना जनता के लिए और जनता के द्वारा जनता की क्रांति नहीं हो सकती। दान और यज्ञ की प्रक्रिया अमीर और गरीब दोनों को विधायक पुरुषार्थ के लिए अवसर देती है और उनका आवाहन करती है।

अमीर का दान परिग्रह के प्रायश्चित्त के लिए और सम्पत्ति के विसर्जन के लिए तथा मुनाफे की प्रेरणा के निराकरण के लिए है। परिग्रह या सम्पत्ति जुटाना चोरी है, पाप है। यह दान संपत्ति के संरक्षण के लिए नहीं है। व्यक्तिगत पुण्य कमाने के लिए, या परलोक में सद्गति प्राप्त करने के लिए नहीं है। यह दान सम्पत्ति के उत्सर्ग के लिए है, संग्रह के समर्पण के लिए है। यह दान एक प्रसंग नहीं है, एक प्रक्रिया है, एक सिलसिला है। अमीरों से विनोबा कहते हैं कि अपनी जमीन का छठा हिस्सा आज मुझे दे दो। इसका मतलब यह नहीं कि पाँच हिस्से अपने पास रखकर चैन की बंसी बजाते रहो। वे सिर्फ इतना ही कहते हैं कि आज छठा हिस्सा दो, कल आधा दो, परसों छठा तुम रख लो, पाँच हिस्से हमको दे दो, और १९५७ तक तुम सिर्फ जितनी जमीन जोत सको उतनी रखो, बची हुई दरिद्रनारायण के चरणों में समर्पित कर दो। भू-दान असल में भूमि के बँटवारे के लिए है, भूमि-समर्पण की प्रक्रिया है। यह दान न्यायोचित वितरण के लिए है। इसमें देनेवाला पापक्षालन करता है, और लेनेवाले का सम्मान होता है। अमीर के दोष धुलते हैं और गरीब का सम्मान होता है।

सम्पत्ति का अन्त और मानवता का रक्षण

विनोबा कहते हैं कि तुम कालपुरुष के पद-चिह्नों को पहचानो। अंग्रेजों का साम्राज्य गया, राजाओं की रियासतें गयीं, उनकी गैल अमीरों की अमीरी भी जानेवाली है। जमाने के रवैये को और रफ्तार को रोक सकना किसी के लिए मुमकिन नहीं है। समय को पहचान कर अंग्रेजों ने अपनी प्रेरणा से दिल्ली का तख्त छोड़ दिया। आज उनका-हमारा सभ्यता का सम्बन्ध कायम है। राजाओं ने अपनी मर्जी से अपनी रियासतों का राजपाट जनता-जनार्दन के चरणों में चढ़ा दिया। आज वे जनता के बीच बेखटके रह सकते हैं। अमीर अगर अपनी सम्पत्ति का विसर्जन अपनी इच्छा से करेगा तो सिर्फ उसकी सम्पत्ति जायगी, उसकी इज्जत और हिम्मत बनी रहेगी। हम अमीर की सम्पत्ति का अन्त करना चाहते हैं, उसकी मनुष्यता का विध्वंस नहीं करना चाहते।

पूँजीवाद के पुरुषार्थ का एकमात्र सुयोग

अगर कोई मेरी घड़ी दो धौंस जमाकर मुझसे छीन लेता है, तो मेरी घड़ी तो जाती ही है, लेकिन साथ-साथ मेरी आत्ममर्यादा और मेरा पुरुषार्थ भी खत्म हो जाता है। या तो मैं डर जाता हूँ या प्रतिशोध की जलन से उबलने लगता हूँ। बदला लेने की ताक में रहता हूँ। कहना होगा कि रूस की क्रान्ति के ३५ साल बाद के और चीन की क्रान्ति के ५ साल बाद के इस जमाने में हम रह रहे हैं। पूँजीवाद के सारे अन्तर्गत विरोध चरमसीमा पर पहुँच गये हैं। वह त्रिदोषों के सन्निपात की स्थिति में अपनी अन्तिम साँसें गिन रहा है। प्रतिशोध या प्रतिकार की शक्ति अब अमीरों में नहीं रह गयी है। गरीबों

के साथ स्नेह-सम्बन्ध प्रस्थापित करने में ही उनके लिए पुरुषार्थ का एकमात्र सुयोग है।

इसमें डराने-धमकाने का कोई सवाल ही नहीं है। जो व्यक्ति हमें काली-काली घटाओं से घिरा हुआ बादल दिखाकर हमसे छाता लगा लेने का अनुरोध करता है, वह हमारा वैरी नहीं, दोस्त है। वह हमको आगाह कर देता है। अमीरों को दान का मौका देकर विनोबा उन्हें सावधानी की छत्री दे रहे हैं। उन्हें कोई हौवा नहीं दिखा रहे हैं।

सत्याग्रही प्रक्रिया की विशेषता

'दान' शब्द में कुछ लोगों को जीर्ण मतवाद की महक आती है। वे कहते हैं, सम्पत्ति क्या अमीरों के बाप की है, जो हम उनसे दान में माँगें? उनसे दान माँगने का मतलब यह होता है कि हम अप्रत्यक्ष रूप से उस सम्पत्ति पर उनकी मालकियत कबूल कर लेते हैं।

यह विचार भ्रांति-मूलक है। कोई मनुष्य मेरी टोपी छीन लेता है, मैं समझाकर कहता हूँ देखो, टोपी तुम्हारी नहीं है, मेरी है, तुम्हें उसे रखने का कोई हक नहीं है, लौटा दोगे तो झगड़े का मुँह काला होगा। बात उसकी समझ में आ जाती है और वह टोपी वापस करने के लिए हाथ बढ़ाता है। तो क्या उससे यह कहूँ कि जरा ठहरो, मैं तुम्हें दो तमाचे लगा दूँ, तब तुम मुझे टोपी छीन लेने दो। अमीर अगर समय की गतिविधि को पहचान कर सम्पत्ति का दान कर देता है, तो उतने से उसकी मालकियत सिद्ध नहीं होती। क्रांति की प्रक्रिया के विषय में जो कट्टरपंथी, दकियानूसी कठमुल्ले नहीं हैं, उनके दिमाग में ऐसा आक्षेप कभी नहीं आयेगा। यह दान असल में वस्तु

लौटाने की प्रक्रिया है। अंग्रेजों से भी हमने यही कहा था कि तुम अपनी मर्जी से राज छोड़ दो। सत्याग्रह के अनुशासन के अनुसार हम उनको पूर्वसूचना देते थे। गांधीजी ने घुटने टेककर, हाथ जोड़कर राजत्याग करने की अभ्यर्थना की थी। सत्याग्रह की प्रक्रिया की यह विशेषता है। उसीका अनुसरण आज विनोबा कर रहे हैं। अमीर के लिए अपनी इन्सानियत साबित करने का यह एक मौका है।

सत्याग्रह की प्रक्रिया में अमोघ और अदम्य आस्तिकवाद है। सत्याग्रही किसी को दुष्ट नहीं मानता। अमीर दुष्ट नहीं है। अगर वह दुष्ट होता तो सभी गरीब अमीर बनने के अरमान नहीं रखते। वे दुष्ट बनना थोड़े ही चाहते हैं। अमीर अगर दुष्ट होता तो अन्नदान, वस्त्रदान करने की, दवाखाने, धर्मशालाएँ, पाठशालाएँ आदि के लिए द्रव्यदान करने की प्रेरणा उसे नहीं होती। उसके मन में भी दया और सहानुभूति होती है। लेकिन अमीरी के कारण उसकी भूमिका विषम बन जाती है। वह समाज-विरोधी हो जाता है। उसकी दुष्टता व्यवसाय-जन्य, परिस्थितिगत है, व्यक्तिगत नहीं। अपने में वह शैतान नहीं होता, उसकी भूमिका में शैतानियत का दोष होता है। हम उसकी शैतानियत को खत्म करके उसे इन्सान बनाना चाहते हैं। अमीरी का निराकरण, अमीर के उद्धार के लिए है।

अमीर की मानवता विकसित हो रही है

मानवता की प्रेरणा और जमाने का तकाजा अमीर की मानवता का उद्बोधन करेगा। अंग्रेजों के और देशी नरेशों के उदाहरण के बाद अब कोई यह न कह सकेगा कि यह बात असम्भव या अव्यवहार्य है। लाख-लाख एकड़ जमीन बिरह

के जमींदारों ने विनोबा को दी। अमीर अपनी समयज्ञता का परिचय दे रहे हैं। इस समयज्ञता में से उनकी मानवता का भी विकास होगा।

लेकिन भू-दान-यज्ञ की प्रक्रिया की अपूर्व विशेषता यह है कि उसमें गरीबों के पुरुषार्थ के लिए अमीरों के पुरुषार्थ से भी अधिक अवसर है। हम इस दुनिया में तिजोरी और तलवार की जगह हँसिया-हथोड़े की, हल-बखर की, कुदाली-कुल्हाड़ी और चरखे-करघे की प्रतिष्ठा कायम करना चाहते हैं। इसलिए हमारी क्रान्ति की प्रक्रिया में पुरुषार्थ का साधन न तो थैली होगी और न लाठी। न तलवार होगी, न तिजोरी। अमीर मुट्ठीभर हैं। शस्त्रधारी सिपाही भी मुट्ठीभर ही होते हैं। उत्पादक परिश्रम करनेवाले गरीब करोड़ों हैं। इन गरीबों में एक-दूसरे के साथ सहानुभूति और आत्मीयता की भावना पैदा करना क्रान्ति की अनिवार्य शर्त है। गरीबों का आपस में गठबन्धन करके उनकी एक अजेय सेना का निर्माण इसके सिवा नहीं हो सकता।

कुछ गरीबों के पास दस एकड़ जमीन है। कुछ के पास एक एकड़, आध एकड़ है और कुछ बिल्कुल भूमिहीन हैं। इन सबको एकता के डोरे में पिरोना है। इस एकता का, इस भाई-चारे का इशारा गरीबों का भू-दान होगा। गरीबों का भू-दान उनके बलिदान का प्रतीक है। वह उनके स्नेह की निशानी है, जो एक गरीब को दूसरे गरीब के भाईचारे का परिचय दिलाती है। गरीब का साधन न पैसा हो सकता है, न हथियार। त्याग और बलिदान की शक्ति ही उसके पुरुषार्थ का आधार है। गरीबों से दान लेकर विनोबा उनकी फौज खड़ी कर लेते हैं। पंचानवे या सत्तानवे फीसदी आदमी गरीब हैं। वे अगर एक हो जाते हैं, तो उनकी एकता ही वज्र से अधिक अमोघ सामर्थ्य

दिखा सकेगी। सैकड़ा-पाँच अमीरों पर उन्हें आँख भी नहीं उठानी पड़ेगी, हाथ उठाने की तो बात ही क्या ?

गरीब अपने भाग्य का विधाता कैसे बनेगा ?

गरीबों के दान में एक बहुत मूलगामी तत्त्व है। पूँजीवाद की बुनियाद है—मालकियत की भावना और मुनाफे की प्रेरणा। सम्पत्ति के मोह की यही जड़ है। यह वह चाँदी की बेड़ी है जो पूँजीवाद के कारागृह में गरीब को जकड़ कर रखती है। अमीर को अगर यह डर हो कि उसके सोने के कंकण लुट जायँगे, तो बात समझ में आती है। लेकिन गरीब को किस बात का डर है ? उसके पास खोने के लिए है ही क्या ? अगर कोई कैदी इसलिए डरने लगे कि कहीं उसकी हथकड़ियाँ न छीन ली जायँ, तो आप क्या कहेंगे ? विपुल संग्रह का नाम अमीरी है और अल्प संग्रह का नाम है—गरीबी। अमीर को बड़ी मालकियत का मोह है, गरीब को छोटी मालकियत की ममता है। इसीलिए पूंजीवाद का यह इन्द्रजाल गरीब को भी चक्कर में डाल रहा है। हम अमीर से कहते हैं कि तुम अमीरी छोड़ो और गरीब से कहते हैं कि तुम गरीबी छोड़ो। जिस दिन गरीब छोटी मालकियत की बेड़ी तोड़ देगा उसी दिन आजाद होकर अपने भाग्य का विधाता बनेगा।

अमीर अपनी सम्पत्ति में से दान करता है। बीस रोटियों में से पन्द्रह भी दे देता है तो उसके पास पेट भरने के लिए पाँच रोटियाँ बच जाती हैं। इसलिए सम्पत्ति-विसर्जन के लिए हमने 'दान' संज्ञा का प्रयोग किया है। लाभ की प्रेरणा के निराकरण का संकेत दान में है। लेकिन जो अपनी एक रोटी में से पाव रोटी का भोग लगा देता है, वह भगवान् को अपने जिगर का

टुकड़ा चढ़ाता है। अपना पेट काटकर अपनी स्नेह-भावना प्रकट करता है। उसके दान में यज्ञ के सभी गुण होते हैं। इसलिए गरीब के दान को हम 'यज्ञ' कहते हैं। इसमें मालकियत का ही विसर्जन है। आज हम मालकियत को बिखेरकर सबको मालिक बना देना चाहते हैं, लेकिन यह हमारी बीच की मंजिल है, हमारा मुकाम नहीं है। यह हमारी छत्री है, छप्पर नहीं। हमारा अन्तिम कदम होगा भूमि का 'ग्रामीकरण।' उस दिशा में उत्पादक की मालकियत पहला, बुनियादी, निश्चित कदम है।

पारस्परिक उद्धार का प्रशस्त मार्ग—भू-दान

कुछ लोग यह भी कहते पाये जाते हैं कि भूमिदान में देनेवाले की प्रतिष्ठा है, लेकिन लेनेवाले का कोई भी गौरव नहीं है। क्या सशस्त्र क्रान्ति में लेनेवाले का गौरव होता है? क्या कानून बना देने से पानेवाला गौरवान्वित हो जाता है? राज्य ने कानून बना दिया, भूमिहीन को जमीन मिल गयी। इसमें उसका कौन-सा पुरुषार्थ है? खड्गधारी क्रान्तिकारियों ने सारी जमीन पर कब्जा कर लिया और बाद में जोतनेवालों को बाँट दी। इसमें पानेवाले का कौन-सा पुरुषार्थ है? यह बहुत बड़ा भ्रम है। राज्य कानून से जमीन ले लेता है, शस्त्रधारी अस्त्र-शस्त्र प्रयोग से लेता है। आज दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि विनोबा ले रहे हैं। इसमें कौनसा तात्त्विक अन्तर पड़ जाता है? इस सबका कारण यही है कि अब तक हमारे दिमाग पर क्रान्ति की परम्परागत प्रक्रिया की जबरदस्त पकड़ है। क्रान्ति के साधन के मामले में बुद्धिमान मनुष्य भी गतानुगतिक ही रह गये हैं। जब गरीब भी इस यज्ञ में अपना हविर्भाग चढ़ाते हैं तो दाता और दीन, उदार और भिखारी का फर्क कहाँ रह गया? छोटा

किसान और खेती का मजदूर दोनों एक ही श्रेणी के हैं। दोनों का सामाजिक रुतवा बराबरी का है। वे अगर एक-दूसरे को जमीन देते हैं तो यह सम्प्रदान दोनों का उद्धार करता है।

समझ लीजिए कि झगड़ा-फसाद के कारण कारीगरों के औजार छीने गये। लकड़हारे की कुल्हाड़ी उसके हाथ में नहीं रही, किसान की कुदाली चली गयी और लुहार का हथोड़ा दूसरा कोई ले गया। हम उन सबको इकट्ठा करके उसमें दृढ़ संकल्प की शक्ति पैदा करते हैं। इस संकल्प के प्रभाव से ही उनकी चीजें उन्हें वापस मिल जाती हैं, तो क्या वे गौरवान्वित नहीं होते हैं?

हम जब इनाम बाँटते हैं तो जो अच्छा खिलाड़ी होता है उसका सम्मान क्रिकेट या अच्छा बल्ला देकर करते हैं। शिवाजी महाराज ने प्रसाद के रूप में भवानी माता से तलवार पायी। हम भी बहादुर सिपाही को तलवार भेंट करते हैं। उसी तरह उत्पादन का उपकरण उत्पादक के हाथ में देते हैं, तो क्या यह उसका सम्मान नहीं है?

अमीरी अगर गुनाह है तो गरीबी भी गुनाह है। कंगालियत कोई सद्गुण नहीं है। दरिद्रता में कोई पुण्य नहीं है। दरिद्रता भी सामाजिक अपराध है। जो कंगाल है, वह मालदार बनने के लिए रात-दिन तड़पता रहता है। उसके मन में अमीरी की तमन्ना रहती है। मालदार बनने में जो सफल हो गया वह मालदार कहलाता है। प्रतियोगिता में जो पिछड़ गया, वह गरीब कहलाता है। ऐसा गरीब हताश और हतबुद्धि हो जाता है। गरीबी के कारण गरीब में हैवानियत आ जाती है। हम अमीरी की शैतानियत को खत्म करना चाहते हैं, गरीब की हैवानियत को खत्म करना चाहते हैं। दोनों की इन्सानियत को

बचाना और बढ़ाना चाहते हैं, इसलिए यह क्रान्ति की प्रक्रिया अनूठी और अनोखी है।

भूख और गरीबी को बाँट लेंगे !

जिन लोगों को डर है कि जमीन के बँटवारे से उत्पादन घट जायगा, वे लोग भूल जाते हैं कि आखिर पूँजीवाद में मालकियत से ही तो उत्पादन की प्रेरणा मिलती है। अगर सब मालिक बन जायँगे तो प्रेरणा घटेगी या बढ़ेगी ? परन्तु यदि थोड़ी देर के लिए यह मान भी लिया जाय कि उत्पादन घटेगा, तो भी हम यह स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि हमको उत्पादन बढ़ाने की उतनी चिन्ता नहीं है, जितनी आर्थिक विषमता के निराकरण की है। हम अपनी गरीबी और भूख को ही बाँट लेंगे, चाहे सम्पन्नता बढ़े या न बढ़े। अमीरी बाँटने से कम होगी, उसी तरह भूख और गरीबी भी बाँट लेने से कम हो जायेगी।

याद रहे कि उत्पादन बढ़ा देने से आर्थिक विषमता का निराकरण नहीं होता। जरूरतमन्द को जरूरत की चीज भी मयस्सर होनी चाहिए। उत्पादन की योजनाओं में गरीब को जिन्दगी की जरूरत की चीजें मुहय्या कराने की कोई योजना नहीं होती। एक तरफ उत्पादन का ढेर होगा और दूसरी तरफ भूख की अथाह खाई होगी।

भूख ईश्वर का वरदान भी है और कालपुरुष का अभिशाप भी। भूख न तो संस्कृति जानती है, न धर्म को पहचानती है और न राजनैतिक तन्त्र की कायल होती है। प्रतिसृष्टि के निर्माण की सामर्थ्य रखनेवाले महान् उग्र तपस्वी विश्वामित्र को भी जब भूख ने सताया तो उसने धर्म और सभ्यता की सारी मर्यादाओं

को ताक पर रखकर चांडाल के यहाँ से कुत्ते की बासी टाँग चुराकर खा ली। मनुष्य के व्यक्तित्व का जैसा विध्वंस भूख से होता है, वैसा किसी अस्त्र या आयुध से नहीं होता।

बदले के नशे से क्रूरता का उद्भव

चीन की क्रान्ति का एक प्रसंग है। एक सभा में जमींदार पर आरोप लगाये जाते हैं। सारा वातावरण उबलने लगता है। एक भोली-भाली, कृपाशील, बालबच्चोंवाली देहाती महिला खड़ी होती है और कहती है—

"मैं मुर्गी खाती हूँ, लेकिन अपने हाथों से मुर्गी काट नहीं सकती। मेरे सामने कोई मुर्गी काटने लगता है तो मुझसे देखा नहीं जाता। कलेजा काँपने लगता है, आँखें डबडबाती हैं। लेकिन आज इस वक्त बदला लेने का नशा मुझ पर इतना सवार है कि इन्हीं हाथों से इस जमींदार की गर्दन मरोड़कर मैं इसका लहू पी सकती हूँ।"

इस स्त्री की जगह हम अगर अपनी माँ, बहन और बेटी की कल्पना करें तो हमारे ध्यान में आयेगा कि प्रतिशोध की भावना से मनुष्य का व्यक्तित्व किस तरह तितर-बितर हो जाता है!

बहू रोज भगवान् से प्रार्थना करती है कि अगले जन्म में मुझे सास बना दे और मेरी सास को मेरी बहू बना दे, तो मैं रोज झाड़ू से पीटा करूँगी।

यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक है और हम उसे क्षम्य भी मानते हैं, लेकिन आखिर है प्रतिक्रिया ही। क्रान्ति के लिए प्रक्रियावान व्यक्ति चाहिए, न कि प्रतिक्रियावान। क्रान्ति में प्रतिक्रिया अनिवार्य नहीं है। प्रतिक्रिया से जो क्रान्ति होती है, उसकी कोख से

प्रतिक्रान्ति पैदा होती है। इस क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति की परम्परा का कभी अन्त नहीं आता। हम क्रान्ति के द्वारा मनुष्य के व्यक्तित्व का संरक्षण करना चाहते हैं। उसे छिन्न-भिन्न नहीं होने देना चाहते।

सार्वत्रिक क्रान्ति का पाञ्चजन्य—भू-दान-यज्ञ

अमीरों से हमारा अनुरोध है कि वे वास्तविकता से मुँह न मोड़ें। आज गरीब का राज्य हो गया है। याने सत्ता भूखों के हाथ में है और मालकियत मुट्ठी भर अमीरों के हाथ में। इस तरह की मालकियत कब तक ठहरेगी? लोकशाही, भूख और व्यक्तिगत मालकियत साथ-साथ हर्गिज नहीं चल सकती। एक-न-एक दिन सत्ताधारी उत्पादक, अनुत्पादक की मालकियत को समाप्त किये बिना नहीं रहेगा। यह नियति अटल है। गरीबों से भी हमारा एक निवेदन है। किसान खाने के दाने अलग रखता है और बोने के दाने अलग। बीज के दाने अधिक मूल्यवान और गुणकारी होते हैं। गरीब का यश-रूप दान हमारी क्रान्ति के लिए बीज के दाने का काम करेगा। गरीब के पुरुषार्थ से जो क्रान्ति होगी वह सबकी क्रान्ति होगी, सार्वजनिक और सार्वत्रिक होगी और इसीलिए वह सर्व-कल्याणकारी होगी। भूदान-यज्ञ के रूप में ऐसी क्रान्ति का पाञ्चजन्य बज चुका है। वह हमारे पुरुषार्थ को चुनौती और निमंत्रण दे रहा है। इसी-लिए विनोबा ने दान और यज्ञ की इस उभय-कल्याणकारी प्रक्रिया का प्रयोग बड़ी वीरता के साथ शुरू कर दिया है।

हमारी कुटुम्ब-संस्था मानवीय स्नेह पर अधिष्ठित सहजीवन की प्रयोगशाला है। विनोबा कौटुंबिक जीवन के मूल्यों का विनि-योग सामाजिक जीवन में करने की साधना कर रहे हैं। जिनके

पास जमीन और सम्पत्ति है, उनसे वे कहते हैं कि तुम्हारे परिवार में पाँच आदमी हैं। भगवान् की कृपा हो जाय और छठा बेटा और पैदा हो जाय, तो क्या उसे जायदाद का हिस्सा नहीं दोगे? कुटुम्बवत्सल लोग कहते हैं, "क्यों नहीं देंगे? वह तो जन्म के साथ अधिकार लेकर ही आयेगा।" विनोबा कहते हैं, "आयेगा तब आयेगा, भगवान् की कृपा से इस मिट्टी में से, दरिद्रनारायण के प्रतिनिधि के नाते, आज ही मैं तुम्हारे बेटे के रूप में, तुम्हारे घर में प्रकट हो गया हूँ। मुझे मेरा हिस्सा नहीं दोगे?" इस देश का दयावान् स्नेहालु, ईश्वरपरायण देहाती गद्गद हो जाता है। अपनी विपन्नता में से भी दरिद्रनारायण का षष्ठांश दे देता है। इस तरह विनोबा अपने अनुकरणीय ढंग से मानवीय मूल्यों का बीजारोपण करते चले जाते हैं।

धरा डोलने लगी है

इस संत को न सत्ता का सम्मोह है, न ममता है और न मान्यता की लालसा है। निर्व्याज और निरपेक्ष स्नेह ही उसकी एकमात्र शक्ति और पूँजी है। उसने यह संकल्प कर लिया है कि सन् १९५७ तक वह पाँच करोड़ एकड़ भूमि सारे देश में से इकट्ठी करेगा और एक करोड़ भूमिहीन परिवारों को मालिक बना देगा। भूमि के इस हस्तान्तर से समाज में युगान्तरकारी स्थित्यन्तर होगा। यह अकेले एक व्यक्ति का संकल्प नहीं है, यह इस देश की जनता की आकांक्षा है, धरती-माता का अरमान है, जमाने का तकाजा है, काल-पुरुष की भेरी का निनाद है और क्रान्ति-देवी के डंके की गूँज है। जमीन और आसमान के संकेत एक-दूसरे में मिलकर दसों दिशाओं को निनादित कर रहे हैं। अब शेषनाग का फन हिलने लगा है, धरा डोलने लगी है, मिट्टी चल पड़ी है।

क्रान्ति का मुहूर्त सिर्फ आज है, कल नहीं

हमारी अमीर और गरीब, सभी से हाथ जोड़कर सानुरोध विनय है कि जिसके पास जो हो, हरएक अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक भारत-माता के चरणों में अपना-अपना नैवेद्य चढ़ावे। जिसके पास मोहनभोग और पूड़ी हों, वह मोहनभोग और पूड़ी लाये। जिसके पास चना-चवेना, चिउड़ा हो, वह चना-चवेना, चिउड़ा ही लाये। जिसके पास यह भी न हों, वह जंगल के बेर, करोंदे और अचार ही लेकर आये; लेकिन घड़ी कोई न चूकने दे। दान की लगन और क्रान्ति का मुहूर्त आज ही है और आज के बाद फिर कभी नहीं है।

भारतमाता के मंदिर में प्रसाद के लिए हाथ पसारे सब खड़े हैं, लेकिन नैवेद्य लाने से सब जी चुराते हैं। विनोबा कहते हैं कि नैवेद्य नहीं आयेगा तो प्रसाद कहाँ से बँटेगा? जब अमीर अपनी प्रभूत सम्पत्ति का चढ़ावा भारतमाता के चरणों में चढ़ायेगा और गरीब अपनी अल्प सम्पत्ति का भोग लगायेगा तब उसका गोपाल-कलेवा बनाकर भगवान् कृष्ण की तरह भारतमाता उसको बाँटेगी। सब साथ खायेंगे, साथ काम करेंगे और साथ-साथ आराम करेंगे।

एक सार्वजनिक सभा में
किया गया भाषण

: २ :

जीवनदानी का जीवन-योग

सब तरफ से एक ही शिकायत सुनाई देती है, "आदमियों की कमी है, आदमी खोजे नहीं मिलते!" सरकार भी यही शिकायत करती है, संयोजन और विकास के परिचालक यही कहते हैं, बड़े-बड़े कुशल व्यवसायपति यही कहते हैं, रचनात्मक संस्थाओं के संचालक यही कहते हैं, अपने-अपने घरेलू कामों के लिए नौकर-चाकर रखनेवाले खुशहाल लोग यही कहते हैं और अपने खेत या झोंपड़ी के काम एकाध दिन के लिए मजदूर से करानेवाले गरीब लोग भी यही कहते हैं। एक तरफ तो यह शिकायत है कि आदमियों की तादाद बेशुमार और बेतहाशा बढ़ रही है। दूसरी तरफ कुछ अमीर गोद में बच्चे ले रहे हैं और संस्थाओं में आदमियों का दुर्भिक्ष है। इसका अर्थ यह है कि उपयुक्त और उपयोगी आदमियों का अकाल है। भूदान-यज्ञ-आंदोलन में भी यही अभाव अखर रहा था। "देनेवाले हैं, माँगनेवालों की कमी है, जनता समझने के लिए उत्सुक है, उसे समझानेवाले कहाँ हैं?" विनोबा, जयप्रकाश बाबू से लेकर साधारण-से-साधारण कार्यकर्ता, मगन और छगन तक सबकी यही शिकायत थी। जीवन-दान में से इस शिकायत का सर्व-सन्तोषकारी उत्तर मिलना चाहिए। भारतरूपी इस महामानव-सागर में क्या मनुष्यों की कमी रहे? क्षीर-समुद्र में प्यासा मनुष्य पानी के लिए तड़प-तड़पकर मर सकता है; परन्तु अमृत-सिन्धु

का तो एक बिन्दु भी अक्षय जीवन देता है। जीवनदानी अपनी वृत्ति और कृति से क्षीरसमुद्र को क्षीरसागर में बदल सकते हैं।

जीवनदान का सूत्रपात किसलिए ?

जो रुकती है वह क्रान्ति नहीं है। सूर्योदय के बाद सूर्य की गति रुकती नहीं। क्रान्ति का सूर्य एक बार निकलने के बाद फिर अस्ताचल की तरफ नहीं जाता। कभी-कभी बादल उसे आँखों से ओझल कर सकते हैं, लेकिन बादल असल में सूर्य को नहीं ढँकते; हमारी दृष्टि को प्रतिवद्ध कर देते हैं। क्रान्ति का कदम भी रुकावटों और विघ्नों का सामना करने में कभी-कभी रुकता हुआ-सा नजर आता है; लेकिन दरअसल वह कभी ठहरता नहीं है। रूस की क्रान्ति १६०५ ई० में असफल हुई। उस असफलता से क्रान्ति के सेनापति लेनिन का उत्साह शिथिल नहीं हुआ। उसने बड़ी संयत दृढ़ता के साथ कहा, "हम तो अविरत क्रान्ति का प्रतिपादन करते हैं। हम रास्ते में रुकनेवाले नहीं हैं।" भूदान-यज्ञ के प्रमुख होता विनोवा का भी यही संकल्प है। कहीं हमारा जोश और हमारी रफ्तार ढीली न पड़ जाय, इस विचार से जयप्रकाश बाबू ने जीवनदान का 'पुण्याह्वान' किया।

ईसा ने अपने साथियों से कहा था, 'तुम इस बहुरत्ना वसुन्धरा के नमक हो।' तब उसका अभिप्राय यह था कि तुम्हारी निष्ठा और तुम्हारी कार्यकुशलता से इस मृत्युलोक के जीवन में भी लुत्फ और लज्जत आयेगी। लेनिन ने अपने साथियों से कहा था कि हमें ऐसे क्रान्तियोगी चाहिए जो क्रान्ति के लिए केवल अपनी फुरसत की साँझ ही नहीं, वरन् अपनी सारी जिन्दगी न्यौछावर कर देंगे। किसी ने शंका उठायी, 'कितने आदमी मिलेंगे जो अपनी जिन्दगी कुरबान कर देंगे ?' लेनिन ने कहा, "मुझे कितने की फिक्र नहीं है, थोड़े ही हों, लेकिन अच्छे हों;

इने-गिने ही हों, लेकिन पक्के हों; अपनी बात के धुनी और क्रान्ति के मतवाले।' सवाल यह नहीं है कि जीवनदानी कितने हैं और वे समाज के किस स्तर से आये हैं। सवाल यह है कि क्या वे धुन के पक्के हैं? क्या उन्हें इन्कलाब की लगन लगी हुई है? क्या आराम का सारा सामान और जिन्दगी की अन्य नियामतें उन्हें अगर भाररूप नहीं तो कम-से-कम फीकी मालूम होती हैं? ऐसे आदमी उंगलियों पर गिनने लायक भी हों, तो भी वे सारी कैफियत बदल देंगे। कहते हैं कि श्रद्धा पहाड़ को हिला देती है। जो श्रद्धा चट्टान को दहला देती है, क्या उसका आदमियों पर कोई असर नहीं होगा? जीवनदानियों के लिए सोचने की सबसे मुख्य बात यही है।

अतिमानव नहीं, सही आदमी

पेट तो जैसा दूसरों का है, वैसा ही जीवनदानी का भी है। दूसरों की रसना में जैसे स्वाद के लिए रुचि होती है, वैसे ही जीवनदानी की जीभ में भी होती है। गुदगुदाओ तो उसे हँसी आती है, चुटकी काटो तो उसे भी रोआस आती है। जीवनदानी होने से वह अतिमानुष नहीं बन जाता, परन्तु उसकी वृत्ति में जमीन-आसमान का फर्क होता है। जो उदरार्थी है वह पेट के लिए काम करता है। जो वैभवाकांक्षी है वह सुख-चैन के लिए मेहनत करता है। जो भोग-विलासी है वह भोगक्षमता बनाये रखने के लिए संयम करता है। लेकिन जो क्रान्ति-निष्ठ है वह क्रान्ति के लिए जीता है। जो लोक-कार्य-निरत है वह लोक-सेवा के लिए पेट भरता है और जो स्वार्थत्यागी है वह दूसरों को सुखी करने के लिए संयम और बलिदान करता है। दोनों में यह बुनियादी फर्क है।

जीविका को प्रधान समझकर उसके अनुरूप जो अपने जीवन को मोड़ता है, वह व्यक्तिगत लाभ के लिए समाज-हित की बलि दे सकता है। आप उसे दाम देंगे तो वह काम करेगा, नहीं तो नहीं करेगा। काम आपका है, उसका थोड़े ही है। वह तो दाम का कायल है। जिसे लाभ की अभिलाषा है वह फायदा देखेगा तो काम करेगा, नहीं तो नहीं करेगा। उसे मुनाफे से मतलब है, काम की उसे परवाह नहीं है। काम न हो तो क्या मुजायका है। लेकिन हर हालत में फायदा होना चाहिए। जीवनदानी की मनोवृत्ति इसके बिलकुल विपरीत होगी। आप उसे दाम दें या न दें, उसके 'योगक्षेम' की चिंता करें या न करें, उसे तो काम करना ही है। जब तक उसके शरीर में प्राण होगा और बुद्धि में माद्दा होगा, तब तक वह क्रान्ति की प्रगति में साथ रहेगा। उसके लिए जीविका मुख्य नहीं है, क्रान्ति मुख्य है। लेकिन उसने दान अपनी जान का नहीं किया है, जिन्दगी का किया है। उसे जनता के चरणों में अपनी जान नहीं चढ़ानी है, उसकी खिदमत में अपनी जिन्दगी खपानी है। इसलिए वह अपने निर्वाह की आवश्यक साधन-सामग्री धन्यवादपूर्वक समाज से लेगा। उसको समाज की कृपा और जनता का अनुग्रह मानेगा। परन्तु साथ-साथ वह उस प्रसाद का अपने आपको अधिकारी भी समझेगा। उसके पास अपनी कोई निजी मिलकियत, सम्पत्ति या जायदाद होगी तो वह उसे कृष्णार्पण करके समाज की धरोहर मानेगा। वह विनोबा से यह नहीं कहेगा कि अपनी माल-मिलकियत में से अमुक अंश सम्पत्तिदान में देता हूँ। बल्कि यह कहेगा कि अब यह सारी सम्पत्ति आपकी है। मैंने 'इदं न मम' ('यह मेरा नहीं है') कहकर संकल्प का जल छोड़ दिया है। यदि उसके भाई, बन्धु और स्त्री-पुत्रादि का अधि-

कार सम्पत्ति पर हो तो वह अपने व्यक्तिगत अधिकार का विसर्जन कर देगा और अपरिग्रही बनकर अपने आपको क्रान्ति के कार्य में पूरी तरह लगा देगा। जीवनदान जो देता है, वह 'विश्वजित्-यज्ञ' करता है, अर्थात् वह सारे दानों का संकल्प एक ही दान में कर देता है। जीवन-दान में सम्पत्ति-दान, श्रमदान, समयदान, बुद्धिदान, साधनदान और आयुर्दान सभी कुछ शामिल है। जीवनदान में जीविकादान तो समाविष्ट है ही। जिस प्रकार शंभु के साथ अम्बिका आ जाती हैं, उसी तरह जीवन के साथ जीविका आ जाती है। रामचन्द्रजी अगर राज्यश्री को छोड़कर वनश्री के मार्ग पर पदार्पण करते हैं तो सीताजी छाया की तरह उनका अनुगमन करती हैं। जीवन की जो गति होगी, वही जीविका की भी होगी।

क्रान्ति की मिट्टी

लोग कहते हैं कि क्रान्ति-पुरुष मिट्टी में से सैनिक बनाता है। विनोबा ने मुट्ठी-मुट्ठी मिट्टी माँगने से आरंभ किया। जिस मिट्टी से ईंट बनती, उसी से काली माई या गणेश की मूर्ति नहीं बनती। मूर्ति के लिए खास तरह की मिट्टी खोजनी और 'कमानी' पड़ती है। भूमिदान में जो मिट्टी दाता की स्वयं प्रेरणा से मिली, वही अहिंसक क्रान्ति-वीर पैदा कर सकती है। अब तक विनोबा ने मिट्टी कमायी। अब वे उस मिट्टी में मानवता के बीज बोना चाहते हैं। इसलिए मिट्टी माँगते-माँगते सम्पत्ति माँगने लगे, श्रम माँगने लगे, बुद्धि माँगने लगे, समय माँगने लगे, और अब तो आयु भी माँगते हैं। जो जीवनदान करेगा, वह समाज को जीवन-सम्पन्न बना सकेगा।

पेट के लिए काम नहीं, क्रान्ति के लिए प्रसाद

जो वेतन और दाम के लालच से काम में शामिल होगा, वह

अपने जीवन से हाथ धो बैठेगा, समाज को धोखा देगा। जो क्रान्ति के लिए जीने का संकल्प करेगा और निर्वाह के लिए 'प्रसाद' ग्रहण करेगा, उसका जीवन धन्य होगा और वह समाज की तरफ़ से वफ़ादार रहकर अपना ईमान सँभालेगा।

पटना १७. ६.' ५४

: ३ :

गरीबों की क्रान्ति का अर्थ

एक रिक्शे में पाँच सवारियाँ बैठकर जा रही थीं। पुलिस का सिपाही देख रहा था। कुछ कहने की हिम्मत नहीं हो रही थी। रिक्शे में बैठे हुए बाबू लोग थे, कोट-पतलून, ऐनक आदि सारे आधुनिकतम प्रसाधनों से सजे हुए। स्टेशन पर ये लोग रिक्शे से उतरे। आपस में बातें शुरू हुईं। चर्चा के अब ठप्पे बन गये हैं। एक ही ढाँचे में ढला हुआ वार्तालाप सब जगह सुनने को मिलता है।

एक ने कहा, "बिलकुल मक्कार सरकार है। कहीं कोई अनुशासन नहीं। वक्त पर काम नहीं होता, गरीबों का तो जरा भी खयाल नहीं किया जाता। हर जगह उनको धोखा दिया जाता है और उनकी आत्ममर्यादा कुचली जाती है। ऐसा ईश्वरविरोधी राज है कि गरीबों की सुध भगवान् भी नहीं लेते।" इत्यादि-इत्यादि।

दूसरे ने कहा, "पूँजीवाद का अमल है। किसान-मजदूर का संगठन किये विना वेड़ा पार नहीं होगा। मैं तो आजकल उसी उद्योग में हूँ।"

वैज्ञानिक प्रक्रिया में भावना का क्या काम ?

गरीबों के ये खैरख्वाह एक रिक्शे में पाँच-पाँच बैठे थे। उनकी अन्तरात्मा में कोई टीस नहीं थी। कुली के सिर पर भी उन्होंने उसी वेरहमी से वेहिसाब बोझ लादा और इंटर क्लास के डब्बे में बैठने के बाद पैसे के बारे में उससे देर तक चख-

चख की। गरीबों का कोई खयाल करना, उनका कर्तव्य थोड़े ही था ? उन्होंने तो रहम, हमदर्दी और परोपकार की सारी जिम्मेवारी राज्य-संस्था को सौंप दी थी। उनका अपना हृदय सभी तरह की मानवीय भावनाओं से बिलकुल रूखा-सूखा रेगिस्तान है। वे विप्लववादी हैं, विद्रोही हैं, युयुत्सु हैं, लेकिन मानवीय करुणा से उनको कोई मतलब नहीं है। उन्हें तो केवल संघर्ष चाहिए। संघर्ष में जो उनके साथ होंगे, वे ही उनके 'साथी' होंगे। यह जरूरी नहीं कि जो 'साथी' हो, वह हमारा मित्र भी हो, उनके लिए हमारे मन में स्नेह हो। वैज्ञानिक प्रक्रिया में भावना का क्या काम ?

आपस में हमदर्दी का भाव नहीं

दो-तीन दिन के बाद फिर वही दृश्य देखा। उसी तरह रिक्शे में पाँच जने लदे हुए थे। अबकी बार रिक्शेवाला बाबुओं का बोझ नहीं ढो रहा था। पाँचों सवारियाँ मेहनती और परेशान गरीबों की थीं। वे भी बिलकुल बेरहमी से रिक्शेवाले से पैसे के लिए हुज्जत कर रहे थे। गरीबी ने उन्हें बेहया बना दिया था; उनकी सारी मानवीय संवेदनाओं पर मानो काठ मार गया था। उन्हें दूसरे गरीबों के दुःख-दर्द के साथ समवेदना नहीं थी। उन्हें तो यही शिकायत थी कि दुनिया में खुशहाल लोग क्यों हैं ? रिक्शेवाले में और उनमें एक ही समान धर्म था कि अमीरों की अमीरी के संरक्षण के लिए बनी हुई अर्थ-रचना को तोड़ना चाहते थे, उस व्यवस्था के कानून और नियमों को सरे बाजार भंग करना चाहते थे। "यह देखो रिक्शे में पाँच-पाँच सवारियाँ लदकर तुम्हारी छाती पर मूँग दलते जा रहे हैं।" रिक्शेवाले का यही रुख है। अमीरों के खिलाफ रिक्शावाला और उसकी सवारियाँ, दोनों को शिकायत है, दोनों अमीरों के कट्टर दुश्मन

हैं, परन्तु आपस में एक-दूसरे के लिए उनको कोई हमदर्दी नहीं है।

आपस में कोई निरपेक्ष एकता नहीं

गरीब के होश बिगड़ गये हैं और अमीर के होश उड़ने की फिक्र में हैं। इसलिए दोनों परिस्थिति का ठीक-ठीक विचार करने में असमर्थ हैं। एक-दूसरे के खिलाफ मन में जो प्रतिक्रिया उठती है, उसीके मुताबिक दोनों व्यवहार करते हैं। गरीबों के खिलाफ सारे अमीर एक होने का विचार करते हैं और अमीरों के खिलाफ सारे गरीब एकता करने का इरादा करते हैं; लेकिन दोनों में आपस में कोई निरपेक्ष एकता नहीं है। इसलिए दोनों में केवल विरोध की भावना जोर पकड़ती है, मैत्री और सख्य-भावना का विकास करने की चिन्ता किसी को नहीं है।

मनुष्य-शक्ति के रूप में पूँजीवाद ने जो कुछ अवशिष्ट रखा है, वह यह है। मनोवृत्ति और आकांक्षा की दृष्टि से अमीर और गरीब दोनों में कोई फर्क नहीं है। अमीर और अमीर के बीच चढ़ा-ऊपरी और स्वार्थों की टक्कर है और गरीब-गरीब के बीच में होड़ तथा स्वार्थों का झगड़ा है। इसीमें से हमें बन्धुत्व और समत्व की ओर अग्रसर होना है।

यह क्रान्ति नहीं कही जा सकती

क्रान्ति की आवश्यकता और जल्दी किसे है? अमीर को या गरीब को? मुसीबत और कष्ट तो गरीब को है। उसे क्रान्ति की जल्दी है। समाज में फी सदी नब्बे व्यक्ति गरीब हैं। ऐसी हालत में क्रान्ति के लिए इतना वक्त और इतने प्रयास की जरूरत क्यों होनी चाहिए? एक हो सकता है। पूँजीवादी मूल्य और पूँजीवादी मनोवृत्ति का त्याग गरीब ने नहीं किया है। मुट्ठी भर अमीर उसके सारे पराक्रम को निष्फल कर सकते हैं। अमीर की

तरह गरीब भी शोषण के मौकों की ताक में रहता है। अमीर के पास शोषण के जितने साधन और मार्ग हैं, उतने गरीब को उपलब्ध नहीं हैं। यह गरीब की शिकायत है। इसलिए अमीर के खिलाफ उद्दंडतापूर्वक विद्रोह करना, वह अपना अधिकार मानता है और उसमें शामिल होने के लिए दूसरे गरीबों को भी दावत देता है। इससे अमीर की सम्पत्ति छीनने की वृत्ति तो पैदा हो सकती है; परन्तु संग्रह के सार्वत्रिक निराकरण की भावना नहीं पैदा हो सकती। इसे विद्रोह या बगावत भले ही कह लीजिये। यह क्रांति हरगिज नहीं कही जा सकती।

शोषण की भावना का निराकरण आवश्यक

क्रांति का अर्थ है, पूँजीवादी मूल्यों का समूल निराकरण। सौ में से पंचानवे व्यक्ति जो कि गरीब हैं, अगर द्वेष और प्रतिशोध की भावनाओं की मूर्तियाँ बन जायँगे, तो सारा सामाजिक जीवन जहरीला हो जायगा। गरीब अपनी गरीबी के निराकरण की प्रक्रिया में पूँजीवाद के मूल्यों को तो तूल देना नहीं चाहते ? तब तो उन्हें व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामूहिक जीवन में से सबसे पहले शोषण की भावना का निराकरण करना चाहिए। एक गरीब दूसरे गरीब की गरज से फायदा उठाने की भावना जब तक रखेगा, तब तक समाज में शोषण के बीज रहेंगे और चूँकि गरीब ही उन्हें हर क्षण सींचते हैं, इसलिए वे जड़ पकड़ेंगे और पनपेंगे।

देश के गरीबों को इस बुनियादी विचार का शिक्षण देना बहुत आवश्यक है। बेदखलियों के खिलाफ आन्दोलन में इसके लिए अवसर भी है।

भागलपुर ८.८.'५४

परिशिष्ट :

गरीबों से जमीन लेने के चार कारण

[विनोबा]

हम सबसे जमीन माँगते हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि हम सबसे समान जमीन माँगते हैं। जो मध्यम श्रेणी के किसान हैं, उनसे हम छठा हिस्सा माँगते हैं। जो बड़े-बड़े काश्तकार और जमींदार हैं, उनसे तो हम कहते हैं कि आप अपने लिए थोड़ा-सा रखकर बाकी सारा दान में दें और जो बिलकुल गरीब हैं, उनसें तो हम प्रसादरूप में, वे जो भी दें, ग्रहण कर लेते हैं। जैसे सुदामा के तन्दुल से भगवान् प्रसन्न हो गये थे, वैसे ये गरीब लोग अगर थोड़ा भी दे देते हैं तो भारतमाता प्रसन्न होती है, क्योंकि वह तो प्रेम का एक चिह्न है। जब तक देश के सब बे-जमीनों को जमीन नहीं मिलती है, तबतक हम माँगते जायेंगे। मुझसे अक्सर यह सवाल पूछा जाता है कि गरीबों से दान क्यों लेते हो ? मुझे इसका जवाब देने में खुशी होती है, क्योंकि इससे ज्ञान-प्रचार हो जाता है। हम गरीबों से जमीन लेते हैं, इसके चार कारण हैं :

गरीब का गरीब के लिए ही त्याग

१. आज समाज में सबसे दुखी बे-जमीन लोग हैं। उनकी तुलना में गरीब किसान भी सुखी है। आखिर हम जब किसी को सुखी या दुखी कहते हैं, तुलना से ही कहते हैं। अगर कोई अपने से जो नीची श्रेणी में है उसकी ओर देखे, तो वह खुद को सुखी समझेगा। अपने से जो ऊपर है, उसकी ओर देखेगा तो खुद को दुखी समझेगा। इसीलिए आज समाज में जो सबसे

ज्यादा दुखी है, उसके लिए हरएक को थोड़ा-थोड़ा त्याग करना चाहिए। समुद्र सबसे नीचे की सतह पर है तो दुनिया का सारा पानी उसीकी तरफ बहता है। पहाड़ का पानी भी समुद्र की तरफ दौड़ता है और मैदानवाला पानी भी समुद्र की तरफ दौड़ता है। अगर उस पानी से कहें कि तू क्यों समुद्र की तरफ दौड़ता है, वह तो निचान पर है, तो वह कहेगा कि समुद्र से तो मैं ऊँचान पर हूँ। इसलिए मैं भी उसीकी तरफ दौड़ूँगा। उसी तरह जैसे श्रीमान् का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे-जमीन के वास्ते कुछ दे, वैसे ही गरीब का भी यह कर्तव्य हो जाता है; क्योंकि जो बिलकुल बे-जमीन हैं, उनके हिसाब से वह गरीब किसान कुछ सुखी ही है। इसलिए हरएक की जिम्मेदारी हो जाती है कि वह कुछ-न-कुछ करे। यही बात हम सिखाना चाहते हैं, अन्यथा जिनके पास कम जमीन है, उनका कुछ कर्तव्य ही नहीं रहा, ऐसा हो जायगा, लेकिन हरएक का कुछ कर्तव्य है। मेरे लिए पर्याप्त रोटी मेरे पास नहीं है, तो भी अगर कोई भूखा मेरे पास आ जाय तो मेरे पास जो कुछ भी है, उसमें से एक हिस्सा उसको देना मेरा कर्तव्य है। यह एक धर्म है। हम यही भावना समाज में लाना चाहते ।

आसक्ति का निराकरण

२. आखिर हम सिखाना चाहते हैं कि जमीन पर किसी-की मालिकी ही नहीं रहनी चाहिए। आज जैसे श्रीमान् अपने को जमीन का मालिक समझता है, वैसे गरीब भी अपनी थोड़ी-सी जमीन का अपने को मालिक समझता है। दोनों खुद को जमीन का मालिक मानते हैं। हम दोनों को इस मालिकी की भावना से मुक्त करना चाहते हैं। जैसे प्यासे को पानी पिलाना अपना कर्तव्य है, वैसे ही जो माँगता है उसे जमीन देना भी

अपना कर्तव्य है; क्योंकि जमीन परमेश्वर की है। यह हम समझना चाहते हैं। आज की मालिकी की भावना श्रीमान् और गरीब दोनों में है। वैसे तो जंगल में रहनेवाले एक बावाजी के पास दो लंगोटियाँ रहती हैं। उनमें उसकी उतनी ही आसक्ति रहती है, जितनी एक श्रीमान् की अपने ढेर कपड़ों में रहती है। इसलिए हम सबको आसक्ति से छुड़ाना चाहते हैं।

नैतिक प्रभाव

३. हम श्रीमानों से जमीन माँगें तो उसके लिए हमारा उन पर असर भी होना चाहिए। लेकिन असर कैसे होगा? हमारे पास कौन सी शक्ति है? क्या हमारे पास पिस्तौल है। हमारे पास न पिस्तौल है, न पिस्तौल की ताकत पर हमारा विश्वास ही है। हमारी तो मान्यता है कि पिस्तौल से कोई काम बनता ही नहीं, बिगड़ता ही है। इसलिए हम नैतिक शक्ति निर्माण करना चाहते हैं। जब हजारों गरीब दान देंगे तो नैतिक शक्ति पैदा होगी और उसका असर श्रीमानों पर होगा। ऐसा हो भी रहा है। पहले तो श्रीमान् लोग हमें टालते थे, परन्तु अब हजारीबाग में उन लोगों ने मुझे कितनी जमीन दी? उन्होंने जमीन अब क्यों दी? इसलिए कि जब दो साल तक गरीब लोगों ने हम पर दान की वर्षा की तो आखिर शर्म भी एक चीज होती है और बेशरम के लिए शरम होना भी अच्छा है। शास्त्रों ने कहा—'ह्रिया देयम्'। नैतिक शक्ति प्रकट करने का यह एक तरीका है। दिन-ब-दिन हमारा काम श्रीमान् लोग उठा लेंगे, ऐसा हमारा विश्वास है। जिन्होंने एक लाख एकड़ जमीन दी, वे राजा साहब मुझसे मिलने आये थे। मैंने उनसे कहा कि आपने दान दिया सो तो अच्छा किया, लेकिन सिर्फ इससे काम नहीं होगा। आपको तो अपनी टोली में से औरों से भी दान दिलवाने का

काम करना चाहिए। उन्होंने मेरी बात स्वीकार की। आहिस्ता-आहिस्ता ये बड़े लोग मेरा काम उठा लेंगे, ऐसी मुझे उम्मीद है, क्योंकि गरीबों ने जो दान दिया है, उससे एक नैतिक ताक़त निर्माण हो रही है।

सत्याग्रह-सेना की असली ताक़त

४. मैंने कई बार कहा है कि हम अपनी सेना तैयार कर रहे हैं। ऊँच-नीचवाला भेद हमें खत्म करना है और ऐसी सेना बनानी है जिसके आधार पर हम लड़ाई लड़ सकते हैं। जिन्होंने दान दिया होगा या त्याग किया होगा और जिन्होंने हमारे काम के साथ सहानुभूति बतायी होगी वे ही हमारे सैनिक बनेंगे। हमारी सेना हिंसा की नहीं है। हिंसा की सेना में तो जिनकी बत्तीस इंच छाती होती है उन्हें लिया जाता है। लेकिन हमारी सेना में दाखिल होने के लिए त्याग की छाती चाहिए। आगे कभी अगर श्रीमानों के दिल न खुले तो हम एक कदम और भी आगे बढ़ेंगे। आज जो कह रहे हैं उससे एक भी कदम आगे नहीं बढ़ेंगे, ऐसी हमने अपने लिए कैद या मर्यादा नहीं रखी है। हमारा ऐसी कैद पर विश्वास नहीं है। हमारे लिए तो प्रेम की शक्ति होनी चाहिए। माँ भी बच्चे के लिए कितना त्याग करती है, बच्चे के लिए वह उत्पादन करती है। लेकिन वही जब देखती है कि बच्चा बुरे रास्ते पर जा रहा है और उसका उसे दुख होता है तो वह क्या करती है? वह सत्याग्रह ही तो करती है। वह उपवास करती है और खुद उसको समझाती है। दूसरों को तकलीफ दिये बगैर खुद तकलीफ सहन करना और समझाना, इसीका नाम है सत्याग्रह।

सत्याग्रह का नाम लेकर मैं कोई धमकी की बात नहीं कर रहा हूँ। मैं जानता हूँ कि सत्याग्रह का दुरुपयोग हो सकता है

और इन दिनों तो अक्सर हो रहा है। लेकिन मैं मानता हूँ कि सत्य का आचरण आग्रहपूर्वक करना चाहिए, ताकि सामनेवालों के हृदय पिघलें। इसके लिए चाहे जो त्याग करने की तैयारी ही सत्याग्रह है और मैं मानता हूँ कि अगर एक भी सच्चा सत्याग्रही दुनिया में होगा तो उसका असर सारी दुनिया पर पड़ेगा और दुनिया का हृदय पिघलेगा, लेकिन उसके मन में सारी दुनिया के प्रति प्रेम होना चाहिए।

लड़ाई की जरूरत नहीं होगी

मेरा विश्वास है कि मेरी सेना ऐसी जबर्दस्त साबित होगी कि उसे लड़ना ही नहीं पड़ेगा। "हुंकारेणैव धनुषः।" तीर छोड़ने की भी जरूरत नहीं है। सिर्फ धनुष की टंकार सुनकर ही सामनेवाला खत्म हो जाता है, ऐसा कहा गया है। वैसे ही हमारी सेना की हुंकार से ही काम हो जायगा। जब लाखों गरीब लोग दान देंगे तो बिना लड़ाई लड़े काम हो जायगा। हजारीबाग जिले में हमें साढ़े चार लाख एकड़ जमीन मिली। लेकिन हमने कहा, "हमारा इतनी भेंट से सन्तोष नहीं होता है।" इसलिए हमने वहाँ के लोगों को साठ हजार दानपत्र लाने को कहा और उन्होंने उसे मंजूर भी किया। यह हम क्या कर रहे हैं? भगवान् को जब गोवर्धन खड़ा करना था, तो उसने सबसे कहा कि अपनी-अपनी लाठी उसके नीचे लगाओ। यह एक जनशक्ति निर्माण करने की बात है। इसलिए हम सब लोगों से दान लेते हैं।

अध्ययन के चोर

"गांधीवाले" और "कांग्रेसवाले" दोनों ही एक बात में एक पंगत में बैठे हैं। वह बात यह है कि दोनों अध्ययन के चोर हैं।

गांधीजी के आदमियों से जब पूछते हैं कि आप क्या अध्ययन कर रहे हैं, तो वे कहते हैं कि हम तो गांधीजी का ही काम कर रहे हैं, फिर हमें पढ़ने की क्या जरूरत है ? खुद बापू के लिखे हुए लेख भी जब ये लोग नहीं पढ़ते थे, तब हम जैसों का तो भाव ही कौन पूछे? पर मैं ऐसे लोगों से पूछता हूँ कि भाई, तुम पढ़ते नहीं हो तो वह बेचारा लिखता किसलिए है। तुम इतना भी नहीं देखते कि वह रात या दिन देखे बिना लिखता ही चला जाता है। तो वे लोग कहते हैं कि वे तो दूसरे लोगों के लिए लिखते हैं, जो समझे नहीं—उनके लिए। हम तो समझे ही हुए हैं और उनका ही काम करने में जुट पड़े हैं। इस तरह गांधीजी के अनुयायियों में 'मूल में ही घाटा' पड़ा है और वह है अध्ययन का। खैर, उन दिनों तो यह बात चल जाने जैसी थी। उस वक्त तो एक भिन्न प्रकार का मोर्चा मँड़ा हुआ था। इस वक्त तो एक अभावात्मक (निगेटिव) काम करना था। पर आज तो अध्ययन के बिना हमारी गाड़ी आगे नहीं चलेगी।

……स्वराज्य मिलने के बाद अब हम अध्ययन के बिना प्रगति नहीं कर सकेंगे। इसलिए विचारों का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।

—विनोबा